देवरी की संघर्ष गाथा

कुसुम कार्निक
आनन्द कपूर

देवरी गांव के जोहड़ पर पानी पीते जंगली जानवर

देवरी के जोहड़ पर पानी भरती महिला व पानी पीते पालतू पशु

प्रस्तावना

मुझे ठीक से याद है, 1985 के दिसम्बर माह में पचपन किमी पैदल चलकर देवरी गांव में पहुंचा था। भीकमपुरा से गोपालपुरा-माण्डलवास-मथुरावट, करोट, कालीघाटी, ऊमरी होते हुए प्रातः पांच बजे चलकर रात्रि आठ बजे पहुंच पाया था। वे दिन उत्साह में अधिक से अधिक कठिन काम करके आनन्द प्राप्त करने के दिन थे। एक दिन इस गांव में रहकर प्रभात पटेल के साथ फिर ऊमरी, हरसावल, क्रास्का, गुर्जरों की ढाणी, भर्तृहरि होते हुए चिडावतों के गुवाड़े में पहुंचा था। यह दूरी भी चालीस किमी से कम नहीं है। जंगल की यह पैदल यात्रा मुझे बराबर याद है। क्योंकि रास्ते में कहीं पीने का पानी नहीं मिला था। हरसावल का झरना भी उन दिनों सूखा था। लेकिन प्रभात की प्रेमभरी बातों ने प्यास के अहसास को कम कर दिया था। उनके द्वारा बराबर दिया जा रहा भरोसा मेरे अन्दर नई ऊर्जा का संचार कर रहा था। इसी के प्रेम ने मुझे इस गांव से ऐसा जोड़ा कि दस-दस दिन तक इस गांव को छोड़कर जाने का मन नहीं होता था। एक समय था जब कि मेरा लगभग आधा समय इसी क्षेत्र में लग जाता था। तभी तो संघ के अधिकतर कार्यकर्त्ता इसी क्षेत्र से तैयार हुए। इनमें जगदीश गुर्जर, रामदयाल, सतीश कुन्जबिहारी, मिश्रीलाल, हरफूल, प्रभात, गिर्राज, भगवान सहाय, रामफूल, हरफूल, श्रीराम, दयाराम, परताराम, बब्बू मीणा, भम्बू गुर्जर, बुद्धा, देवीसहाय, रामजीलाल, मनोहर, भगवानसहाय शर्मा, गजानन्द, आदि प्रमुख हैं। 1988 तक गोवर्धन शर्मा, श्रवण शर्मा, लक्ष्मण सिंह, आनन्द कंवर, गोपालसिंह, नानकराम, नवनीत, सतेन्द्र सिंह, जगदीश शर्मा आदि तो पूर्णकालिक कार्यकर्त्ता बन गये थे। ये इस क्षेत्र में जंगलात कर्मचारियों के अत्याचार का प्रत्यक्ष शिकार भी हुए थे। जंगलात कर्मचारियों के आतंक से जूझने की हिम्मत इन्होंने गांव-गांव में घूमकर पैदा कर दी थी। 1986 में देवरी गांव की आय का बड़ा हिस्सा कर्मचारियों की जेब में जाता था।

ऐसे में लोगों की अपनी दृष्टि खत्म हो गई थी। स्वयं गांव वालों को अपने हित की सोचना तथा योजना बनाना दूर का सपना लगता था। गांव में कोई संगठन की शक्ति नहीं बची थी। इसलिए सत्ता के शोषण को बर्दाश्त करना ही इन्होंने अपनी नियति मान लिया था। जैसे ही इन्हें हम पर भरोसा हुआ, वैसे ही इन्हें अपनी शक्ति का भान होने लगा। विश्वास ही आत्मविश्वास को जाग्रत करता है। यह इस क्षेत्र में प्रत्यक्ष काम से अनुभव

हुआ। तभी तो इस क्षेत्र के पूर्व में जंगलात से डरने वाले लोग ही गोवर्धन शर्मा को जंगलात कर्मचारियों से छुड़ाकर ले आये थे। फिर इन्हीं लोगों ने बिना डरे सरिस्का के कोर क्षेत्र में जल संरक्षण हेतु जोहड़, बांध, ऐनीकट, चैकडैम आदि बनाये। जंगलात ने इन्हें नहीं बनाने देने की बात ठान ली थी। लेकिन ये अनुशासित होकर संगठित रूप से कार्य करते रहे। 377 व्यक्तियों के विरुद्ध झूठे मुकदमें बना दिये गये फिर भी ये नहीं घबराये बल्कि उल्टे अधिकारियों को ही निलम्बन/स्थानान्तरण भुगतना पड़ा।

इस छोटी जीत के बाद इस क्षेत्र में काम तेज हुआ। संगठन मजबूत हुए। लोगों ने अपने श्रमदान व सहयोग की व्यवस्था कर ली थी। फिर तो जहाज वाली नदी के जलग्रहण में ऊपर से कार्य शुरू होकर नीचे तक होता चला गया। जंगल बचाने के लिए गांव-गांव में लोगों ने अपने दस्तूर बना लिए। अंगूठे से अधिक मोटी हरी लकड़ी कोई नहीं काटेगा। कच्ची घास दिवाली से पहले नहीं काटी जायेगी। बाहर के ऊंट, भेड़, बकरी अन्य पशु अपने गांव के गोचर में चराई हेतु नहीं घुसने दिये जायेंगे। इस प्रकार के ग्रामीण कानून-कायदों से कार्य चलने लगा। धीरे-धीरे चार साल बाद पहाड़ों पर हरियाली वापस लौटने लगी। नौ वर्ष बाद जहाज वाली नदी वर्ष भर बहने लगी। इसके बहने का क्रम भी ऐसा था - पहले मानसून के एक माह बाद तक फिर ढाई, चार, छः माह बाद तक। वहीं 1997 में पहली बार पूरे वर्ष यह नदी सजल रही है।

देवरी मेरे लिए तथा **तरुण भारत संघ** के अन्य कार्यकर्त्ताओं के लिए पाठशाला रहा है। यहीं के लोगों के साथ रह कर हमने अपने काम की दिशा तय की। गति पायी।

देवरी की व्यथा और संघर्ष दोनों की गाथा **श्रीमती कुसुम कार्निक** एवं **श्री आनंद कपूर** ने तैयार की है। विस्तार से। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूं। **प्रो. मोहन श्रोत्रिय** ने इसे संपादित किया है। मैं उन्हें भी धन्यवाद देता हूँ। इस कथा के जो नायक-नायिका हैं देवरी गांव के जीवंत पात्र, वे सब बधाई के पात्र हैं।

राजेन्द्र सिंह
महामंत्री, तरुण भारत संघ

1

देवरी की व्यथा-कथा

भम्भू की जुबानी

"क्या बताऊं कैसे चल रहा है ? दिन-ब-दिन हमारी हालत खराब होती जा रही है। गांव में पीने के लिये पानी नहीं। न हमको, न जानवरों को। जंगलात ने हमारे सारे रास्ते बंद कर रखे हैं। हम धरती के छोर पे रह रहे हैं।" बहुत दुःखी होकर भम्भू अपने समधी क्रास्का के गणपत गुर्जर से कह रहा था।

गणपत के मन में भी चिंता थी। उसकी अपनी लड़की इनके घर देवरी में ब्याही हुई है और देवरी की हालत बिगड़ती जा रही है। उसके मन में एक आशा की किरण चमकी। दिलासा देने वाले स्वर में वह बोला, "भाईजी, हमारे गांव में एक संस्था का आना-जाना शुरू हुआ है। संस्था के एक गुरुजी गांव में आकर बच्चों को पढ़ा रहे हैं। संस्था गरीबों की मदद करती है आप भी उनसे मिल लीजिए।"

भम्भू के मन में निराशा छायी थी। संस्था क्या होती है ? वह क्या करेगी ? जंगलात वालों से कौन लड़ सकता है ? उसके मन में यही सवाल घिर रहे थे। लेकिन

समधी को नाराज नहीं करना था। इसलिए हां कर दी और दोनों ने तय किया कि चलो चलते हैं। संस्था के लोगों से मिलकर अपनी दु:खभरी कहानी उनको बताएंगे। फिर देखते हैं क्या होता है ?

भम्भू और गणपत भूखे-प्यासे दोपहर के समय किशोरी पहुंचे। वहाँ उन्होंने अपनी बात रखी।

''हमारा गांव बहुत मुश्किल में पड़ गया है। न पीने को पानी है, न जानवरों के लिए चारा है। खाने के लिए अनाज भी बहुत कम है। वन विभाग से हम तंग आ गये हैं। चारों तरफ नंगी पहाड़ियां, कहीं-कहीं कटे हुए पेड़ों के ठूंठ। घास कहीं नहीं। भूखे और प्यासे जानवर तड़पते रहते हैं। कुएं सूखे पड़े हैं। जंगल में न घास है, न चारा है, न पानी है। जंगली जानवर प्यासे मर रहे हैं।'' भम्भू आगे बता रहा था, ''लोग गांव छोड़ कर जा रहे हैं। खाने के लिए अनाज बाहर से, राजगढ़ से, ले आते हैं। रास्ते में बोराठा वन चौकी से गुजरते वक्त वहाँ के फॉरेस्टर आते-जाते अपनी चौथ वसूलते हैं। कभी-कभी आने-जाने पर भी रोक लगा देते हैं। हमें तो जंगलात वाले दुश्मन जैसे लगने लगे हैं। उन्होंने हमारे सारे रास्ते बंद कर रखे हैं। हम धरती के छोर पे रह रहे हैं।'' भम्भू का गला भर आया। तरुण भारत संघ के कार्यकर्ताओं ने सारा किस्सा शांति और धैर्य से सुना।

यह 1986 की बात है। उनकी बात सुनकर संघ के महामंत्री राजेन्द्रसिंह कुछ दिन बाद अकेले देवरी चले गये। वह लोगों की परिस्थिति देखने के लिए गये थे। लोगों के हक के लिए लड़ने का भाव लेकर गये थे। रास्ता बड़ा लंबा था। किशोरी से मांडलवास-राजोर-कासला-कान्याला-कांकवाडी-कालीघाटी-उमरीवाला पहाड़ पार करके देवरी पहुँचने में 6-7 घंटे लगे थे। उन्होंने गांव का रूप देखा और हकीकत गहराई से परखी। भम्भू ने जो बताया था, हालत उससे भी बदतर थी देवरी की। उनका मन करुणा से भर आया। इस गांव को संकट से बचाने का निश्चय करके ही वह वापस लौटे।

आते ही उन्होंने अपने साथी गोवर्धन शर्मा के साथ चर्चा की। तय हुआ कि गोवर्धनजी देवरी में जाकर रहेंगे और वहीं काम करेंगे।

अरावली पहाड़ियों की चोटी में सरिस्का के जंगल में बसा देवरी एक पुराना और दूर-दराज का गांव है। किशोरी से संघ के कार्यालय को पैदल ही जाना पड़ता है। 6-7 घंटे का पैदल रास्ता है। या तो बस से जाकर फिर गुर्जरों की लोसल, राड़ा, नाडू से होकर एक पहाड़ी, घना जंगल पार करो, तो ऊपर चोटी पर से देवरी के दर्शन होते हैं। सामने पूर्व से पश्चिम की ओर फैली हुई एक संकरी-सी घाटी है। यह

सरिस्का पार्क के कोर नं. 1 के दक्षिण हिस्से में आती है। गुवाड़ा, बाकाला और देवरी मिलकर छोटा गांव देवरी बनता है, जिसकी कुल मिला कर जनसंख्या सात सौ है। यहां 115 परिवार रहते हैं। अरावली पर्वत शृंखला के ऊपर के हिस्से में सरिस्का के जंगल में बसा है यह गांव।

इसके पश्चिम में खजुराहो शैली में बना प्राचीन मूर्तियों से सुसज्जित पुराना नीलकण्ठेश्वरजी का मंदिर है। बताया जाता है कि महाभारत के समय में पाण्डवों ने इसी स्थान पर अपने अज्ञातवास के दिन पूरे किये थे। भीम का गर्व-हरण करने के लिए हनुमानजी भी देवरी के पास पांडुपोल में बूढ़े वानर का भेष बनाकर अपनी पूंछ रास्ते में डालकर बैठे थे। उनकी पूंछ भीम से उठ नहीं सकी थी। उन्हीं हनुमानजी का मंदिर व पाण्डुपोल भी यहीं है। यहां से 20 किमी की दूरी पर भर्तृहरि महाराज का मंदिर है। महान् संत भर्तृहरि उज्जैन के महाराजा थे, जो खुद कवि और दार्शनिक थे।

देवरी अलवर से 39 किमी पश्चिम-दक्षिण में तथा कस्बा राजगढ़ से 17 किमी पश्चिम में स्थित है। यहां साल में वर्षा औसतन 600 मिमी होती है। गर्मी में इस इलाके का तापमान 45° सें. से 47° सें. तक चला जाता है और सर्दियों में 0° सें. तक उतर जाता है। वर्षा के दिनों में हरी-भरी घाटी गर्मी में रूखी-सूखी लगने लगती है। यहां गुर्जर, मीणा तथा कई बलाई परिवार बसे हुए हैं। यहां कुल 375 हेक्टेयर भूमि है। इसमें कृषि योग्य 75 हेक्टेयर भूमि है जो 1986 के समय पूरी असिंचित और एक फसल की थी। पहले लोग पशुपालन से अपनी जीविका चलाते थे। लोग दूध नहीं बेचते थे। घी बेचकर जीविका चलाते थे।

गोवर्धनजी जब पहली बार देवरी में गये, तब गांव की हालत सचमुच बहुत ही खराब और बिगड़ी हुई थी। लोग बर्बादी की कगार पर पहुंच गये थे। कुएं सूखे हुए थे। गर्मी में गांव में पीने के लिए पानी नहीं मिलता था। खाने के लिए अनाज नहीं था। पशुओं के लिए न चारा था, न पानी। लोग मवेशियों को लेकर बाहर चले जा रहे थे। गांव में महिलाएं, बूढ़े और बच्चे रह जाते थे। उनके लिए बाहर से अनाज सिर पर या गधे पर भी लाना एक बड़ा मुश्किल काम बन गया था।

अनाज राजगढ़ से गधों पर लादकर लाते थे। वापसी में जंगल से बांस, लकड़ी भेजते थे। इनका आने-जाने का रास्ता बोराठा वन चौकी के पास पड़ता था। इसलिए आते-जाते दो बार फॉरेस्टर इनसे अपनी चौथ वसूलता था। वन क्षेत्र में वन विभाग के ये रिवाज तो हर जगह पाये जाते हैं। *महाराष्ट्र में भीमाशंकर के जंगलों में रहने वालों से वन विभाग के लोग आज भी वानवला (यानी ब्याही हुई लड़की जब ससुराल जाती है, तो मैके से प्यार से भेजी जाने वाली भेंट) वसूलते हैं। मध्य प्रदेश*

के जंगलों में तो आज भी शादी-ब्याह पर फीस, बिजली कनेक्शन देने की फीस, और इस तरह बहुत-सारा पैसा और अनाज-घी वसूले जाते हैं। देवरी के लोगों की कभी-कभी तो अनाज लाने और घी ले जाने पर बिल्कुल रोक लगा दी जाती थी।

देवरी के लोग आज भी बताते हैं, "1986 में हमें सिर पर अनाज रख कर चोरी-छिपे घर पहुंचना पड़ता था। राड़ा गांव से एक आदमी एक दिन बाजार से वापस आ रहा था। उसने बाजार से जूतियां व कुछ अनाज खरीदा था। वन कर्मचारियों ने रास्ते में उसको पकड़ लिया और एक जगह बंद कर दिया। उनको देने के लिये उसके पास पैसे भी नहीं बचे थे। वह बेचारा हैरान था कि न जाने ये क्या करेंगे। कमरे का छप्पर बना नहीं था। किसी तरह रात में ऊँची दीवार फांद कर वह बाहर निकला और फिर जंगल में ऐसा भागा कि जंगलात वाले उसका पीछा नहीं कर पाए। लेकिन उसका सामान तो उनको मिल ही गया था। दुकानदारों का कर्ज भी हम पर बढ़ता ही जा रहा था। दुकानदार और अनाज देने में भी आनाकानी करते थे। भूख और प्यास के कारण बीमारी ने अपना परचम फैलाना शुरू कर दिया था। चारों तरफ से घिरा हुआ हमारा गांव बिल्कुल वीरान लगता था। नंगे पहाड़ और सूखे पेड़ों के ठूंठ हमारे गांव को जैसे कोसते थे। हम खुद ही अपने गांव में रहने से डरने लगे थे।"

गांव की परिस्थिति कितनी भी कठिन क्यों न हो, लोग किसी तरह निभा ही लेते हैं। *हिमालय की पहाड़ियों में चमोली जिले में खड़ी ढलान पर टिका हुआ दुगढ़ी गांव। दो गढ़ जितना ऊंचा पहाड़ चढ़कर जाना पड़ता था। उस गांव से आना-जाना बेहद मुश्किल था। लेकिन लोगों ने कभी यह नहीं महसूस किया कि उनको अपने गांव में रहने से डर लग रहा था।* देवरी की परिस्थिति कुछ ऐसी ही बर्बादी के कगार पर पहुंच गयी थी कि डर लगना स्वाभाविक था।

देवरी में कहीं कोई धरम-धोरा नहीं बचा था। आपस में एक दूसरे की मदद करने की परंपरा समाप्त हो गयी थी। अन्याय से लड़ने की ताकत नहीं रह गयी थी। गुलामों की तरह ये लोग जंगलात विभाग वालों की मार तथा भगवान् के कोप के लम्बे समय से शिकार रहे थे।

इस परिस्थिति के पीछे एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया है। अंग्रेजों के आने के पहले जगह-जगह का जंगल स्थानीय लोगों के कब्जे में था। लोग जंगल को माता के रूप में देखते थे। वहां से अपनी जरूरतों के लिए जितना चाहिए, उतना ही लेते थे। उसके रख-रखाव और संरक्षण-संवर्धन के लिए लोगों ने पारंपरिक रीति-रिवाज और नियम-कानून बना रखे थे। जंगल की और अपने परिवेश की गहरी और वास्तविक जानकारी स्थानीय जन-समुदाय रखते थे। गांव की जरूरतों के लिए सामलातदेह की व्यवस्था बनाकर रखते थे ताकि जरूरतें भी पूरी हों और जंगल भी

बना रहे। नष्ट होने से बचा रहे। सरिस्का के जंगल क्षेत्र के गांवों में सामलाती संसाधनों की एक व्यापक और समुचित व्यवस्था रहती थी। रखतबनी, कांकड़बनी, देवबनी, देवोरण्य गांव द्वारा स्वयं तय किये हुए स्थानों में होते थे। उनके उपयोग के नियम-कानून भी होते थे। गांव का चारागाह, पनघट भी तय था। सरिस्का जंगल के और आसपास के गांवों में जोहड़ होते थे। यहाँ लोग पत्थर और मिट्टी के बांध अपने-अपने गांव में पारंपरिक तरीकों से बनाते थे। इसकी जगह, लंबाई, चौड़ाई गांव के लोग ही तय करते थे। और टूट जाने या गाद से भर जाने पर उनकी मरम्मत भी करते थे। अरावली की पहाड़ियों से होने वाली वर्षा को बटोरने वाले ये जोहड़ गहरे होने की वजह से पानी का वाष्पीकरण कम करते थे। इससे न सिर्फ आसपास के खेतों में नमी रहती थी बल्कि नजदीक के कुओं में भरपूर पानी रहता था। बताते हैं कि प्रकृति के सर्वाधिक अमूल्य रत्न पानी को सहेजने की यह प्राचीन बैंकिंग प्रणाली पांचवीं से उन्नीसवीं सदी तक जारी रही। पहाड़ों की ढलान पर जब अच्छा घना जंगल होता था, और समतल जमीन पर जोहड़, तो पानी धरती में छनकर फिर जोहड़ों में जमा रहता था। जानवर आराम से वहां जाकर पानी पीते थे। कुओं में पर्याप्त पानी रहता था तो लोगों को पीने के पानी की चिंता नहीं रहती थी।

लोगों को जंगल और जंगली जीवों के प्रति प्यार था। भाईचारे की भावना थी। पेड़ों की अच्छी पहचान और जानकारी थी। पुराने जमाने से बरगद, पीपल, गूलर जैसे पेड़ों को लोगों ने भगवान् का स्थान दे रखा है। ये पेड़ पंछी, प्राणी, कीड़े-मकोड़ों के लिए बड़े महत्त्व के आश्रय-स्थल हैं। इसलिए इन सबको बचाने के लिए इन पेड़ों का महत्व लोगों ने समझा था और माना था। किसी भी हरे पेड़ को काटना जुर्म था। वनौषधि पर लोगों की पूरी आरोग्य व्यवस्था निर्भर थी। उस पर श्रद्धा थी। उसकी पूरी परंपरागत जानकारी व उपयोग के तौर-तरीके तैयार थे। और वे उपयोग भी चिरस्थायी प्रकार के थे। गरुड़, बाघ, हाथी जैसे सामर्थ्यशाली जंतुओं को देवता मानकर उनके संरक्षण की पूरी व्यवस्था बनायी गयी थी। सरिस्का वन क्षेत्र में बाघ की नाहर माता के रूप में पूजा भी की जाती है। पूरे देश के जंगली इलाकों में बाघ को देवता के रूप में आज भी माना जाता है। उसका शिकार नहीं होता था। बाघ अगर पालतू जानवर खाता, तो लोग मानते थे कि भगवान् पर भोग चढ़ गया। सरिस्का जंगल के हरिपुरा गांव के कार्यकर्ता नानकराम भाई बताते हैं कि बाघ की महक से जानवरों के कई रोग ठीक हो जाते हैं। जंगल में नाहर (बाघ) है तो सारा जंगल तन्दुरुस्त और सशक्त है, ऐसा लोग मानते थे। सरिस्का के पास के भांवता गांव के धन्ना गुर्जर कहते हैं कि जंगल को लकड़ी-चोरों से बचाना है, तो बाघ का वहां होना जरूरी है। बाघ हो या गरुड़, ये कमजोर बीमार प्राणियों का शिकार करके उनकी प्रजाति का एक तरह रख-रखाव करते हैं और इनके होने

से शाकाहारी प्राणियों की प्रजाति पर नियन्त्रण रहता है। उससे वनस्पति के बचाव का कार्य होता है। इसलिए शास्त्रज्ञ उनको शिखरबिंदु वाली प्रजाति मानते हैं। उनके रक्षण से सारे जंगल का रक्षण होता है, इसलिए उनका संरक्षण करना चाहते हैं। पर आज का कथित बुद्धिजीवी वर्ग इन बातों को एक सिरे से नकारता है, यह आश्चर्य और चिंता दोनों ही की बात है।

2

जंगलात वालों का जुल्म

तरुण भारत संघ के कार्यकर्ता गोवर्धनजी देवरी में पहुंचे। उन्होंने तय किया था कि वे देवरी में गांव के एक सदस्य की तरह रहेंगे। एक सजग कार्यकर्ता को गांव में जाकर क्या नहीं करना पड़ता ? जो भोजन किसी की कृपा से मिल जाये, उसी से निर्वाह करने से लेकर जहां जगह मिले, वहीं रहने तक की जहमत उठानी पड़ती है। फिर सबके साथ एक दोस्ती का रिश्ता बनाना, किसी का मन नहीं दुखाना, न्याय के रास्ते पर चलना, दिन-रात गांव के बारे में सोचना, अपने काम की चिंता हमेशा मन में रखना····· शुरू-शुरू में यह सब जैसे पहाड़-सा लगता है।

गोवर्धनजी ने गांव में सबसे पहले बच्चों को पढ़ाने का काम शुरू किया। गांव में कोई स्कूल नहीं था। देवरी गांव सरिस्का उद्यान के कोर क्षेत्र में आता है। वन कानून और वन विभाग की समझ से राष्ट्रीय उद्यान के कोर क्षेत्र में कोई भी गांव नहीं होना चाहिए। कोर क्षेत्र में आदमियों का होना वहां की पारिस्थितिकी के लिए खतरनाक होता है, ऐसी उनकी समझ है। इसलिए वन विभाग देवरी को कोर क्षेत्र

से उठाने के प्रयास में था। देवरी के विकास की कोई भी योजना उनको नामंजूर थी। नतीजा यह रहा कि देवरी के लोग निरक्षर ही रहे। बच्चे शिक्षा से वंचित रहे।

गोवर्धनजी ने देखा, देवरी में जंगलात विभाग के चार गार्ड रहते थे। चारों शराब व अपनी मौज-मस्ती के लिए लोगों को बहला-फुसलाकर उनसे पेड़ कटवाते थे। हर छमाही 500 से 1000 रुपये तक वसूलते थे। यह सारा पैसा इन्हीं की जेब में जाता था। वन विभाग वाले जगह-जगह पर रास्ते रोककर चौथ वसूलते थे। लोगों के बाहर से अनाज, घी लाने-ले जाने पर उन्होंने रोक लगा रखी थी, इसलिए गांव वालों ने जंगलात विभाग को अपना सबसे बड़ा दुश्मन मान लिया था। और इस कारण जंगल व जंगली जीवों से लोगों का लगाव भी खत्म होता जा रहा था।

गोवर्धनजी बच्चों को पढ़ाने के साथ-साथ गांव के हालात का अध्ययन भी करते रहे। उन्होंने देखा कि गांव में थोड़े-से लोग हैं, जो वन विभाग के कर्मचारियों से मिलकर पैसा कमाने में लगे हैं और गांव के जंगल को बर्बाद करने में उनका साथ दे रहे हैं। ये ही वे लोग थे, जो वन विभाग को गोवर्धनजी और संस्था के बारे में खबर देते थे। वन विभाग को संस्था की गतिविधियां रास नहीं आयी। संस्था द्वारा गांव की मदद करना उन्हें बिल्कुल मंजूर नहीं था। इनसे वे बहुत नाराज थे। गांव के लोगों को डराने-धमकाने में वन कर्मचारी जी-जान से जुटे थे।

गोवर्धनजी ने गांव के लोगों को जाग्रत करने का काम शुरू किया। उनके हक क्या हैं ? कानून क्या हैं ? इस पर चर्चा शुरू हुई। वन विभाग अगर पैसे लेता है, तो कायदे से उनको रसीद देनी ही चाहिए, यह लोगों को उन्होंने बताया। उनके गांव में रहने और काम करने से लोगों को समझाने के कई महीनों बाद लोगों का आत्मविश्वास जागा। उनमें ताकत आयी। उन्होंने वन विभाग से रसीद मांगना शुरू कर दिया। विभाग वालों ने कहा, ''तुम्हारी यह मजाल ? हम कोई रसीद-वसीद नहीं देंगे।'' गांव वालों ने जवाब दिया ''तुम रसीद नहीं दोगे, तो हम भी कुछ नहीं देंगे।'' वन विभाग इससे नाराज हुआ और गांव से उनकी दुश्मनी और बढ़ गयी। संस्था का वहां आना-जाना उनको बिल्कुल पसंद नहीं था। गांव का स्कूल बंद करने के लिए उन्होंने बहुत कोशिश की। लेकिन लोग अब डटकर खड़े हो गये थे। उन्होंने वन विभाग का जम कर विरोध शुरू कर दिया। एक बार रात में अचानक देवरी पर पत्थर बरसना शुरू हो गया। लोग भयभीत हो गये। लेकिन जब उनकी समझ में आया कि यह वन कर्मचारियों की करतूत है, तो उनका डर दूर हो गया। वन विभाग ने गांव वालों को डराने-धमकाने की हर संभव कोशिश की। उनका कहना था कि अगर गांव वाले संस्था के लोगों को गांव में आश्रय देंगे, तो गांव को वहां से खदेड़ दिया जायेगा। पर गांव वाले टस से मस नहीं हुए।

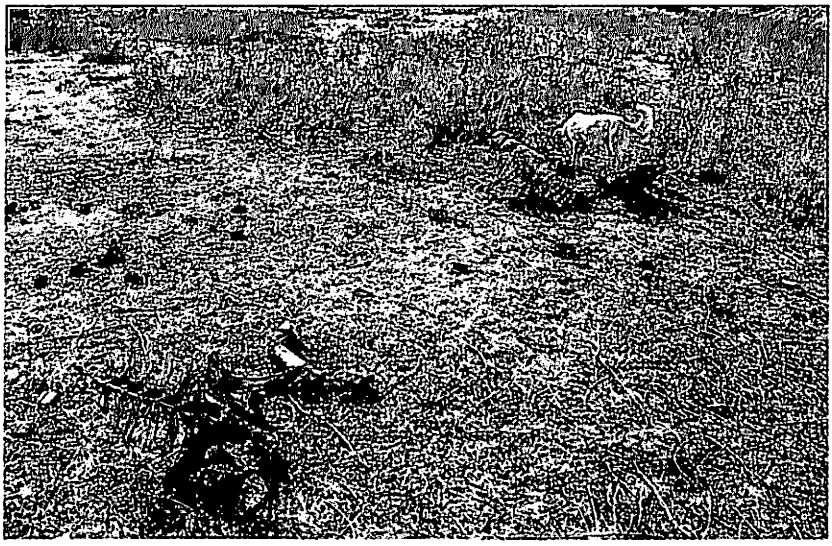

3

अमानुषों की मुट्ठी में जंगल

तरुण भारत संघ ने राजस्थान के अलवर जिले के थानागाजी तहसील में सरिस्का क्षेत्र के गांव भीकमपुरा किशोरी में केन्द्र बनाकर काम शुरू किया था। सन् 1975 में जयपुर विश्वविद्यालय परिसर में लगी आग से पीड़ित लोगों को राहत पहुंचाने के लिए बनी यह संस्था 1986 से सरिस्का के वन और वनवासियों के विकास के लिए काम कर रही है।

जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में शुरू हुई छात्र युवा संघर्ष वाहिनी से निकले तरुण भारत संघ के युवा महामंत्री राजेन्द्रसिंह इस काम में शुरू से ही सक्रिय हैं। उनके साथ उनके कार्यकर्ता साथी देवरी के लोगों में चेतना पैदा करने में काफी सफल हुए।

राजस्थान के अलवर जिले में, अरावली की पर्वत शृंखलाएं, जो गुजरात से निकलकर राजस्थान को दो हिस्सों में बांटती हैं, पश्चिम-दक्षिण से पूर्व-उत्तर दिशा में दिल्ली की तरफ फैली हुई हैं। भारत की यह प्राचीनतम पर्वत श्रेणी अनादिकाल से अनेक छोटी-बड़ी नदियों को जन्म देती हुई अनेक मानव समूहों को और

संस्कृतियों को जीवन देती रही है। 100-200 साल पहले यह एक जैविक विविधता से परिपूर्ण परिवेश था। घने जंगलों से सुशोभित यह घाटी अनेक जलप्रवाहों की जन्मदात्री थी।

अंग्रेजों के जमाने में पूरे भारतवर्ष के जंगल खतरे में पड़ गये थे। रेलवे, जहाज, खनिजों के शुद्धीकरण, बड़े-बड़े मकान, फर्नीचर एवं ऐसी बहुत-सारी जरूरतों के लिए अंग्रेज बड़ी मात्रा में जंगल कटवाते थे। ब्रिटेन ने खुद के देश का जंगल भी 12वीं सदी में ही खत्म कर दिया था और वे बाल्टिक देशों से लकड़ी और टिंबर मंगवाते थे। अनगिनत मीलों तक फैले हुए हिन्दुस्तान के जंगल देखकर वे बहुत ललचाये। दोनों विश्वयुद्धों में युद्ध सामग्री के लिए भी उन्होंने यहां से काफी जंगल काटा। कई जगह उन्होंने कुदरती जंगल काटकर प्लांटेशन किये। स्थानीय लोगों की जरूरत के भी पेड़ काटकर वहां व्यापारिक महत्त्व की प्रजातियों के पेड़ लगा दिये। लोगों की जरूरत के पेड़ कम ही बचे। वन संपदा को उन्होंने व्यापार-व्यवसाय की चीज बना दिया, जिसे वनवासी माता समझते थे। अंग्रेजों ने जंगल दोहन के ऐसे तरीके शुरू किये, जिससे जंगलों का बहुत नुकसान हुआ। अंग्रेजों को मनोरंजन के तौर पर शिकार का शौक था। इंग्लैंड के अमीर-उमरा मन बहलाने के लिए हंटिंग पार्टियां आयोजित करते थे। हर पार्टी में अनगिनत पंछी और जंगली जानवर गोली से उड़ा दिये जाते थे। ऐसे खेल में उन्हें खूब आनंद आता। हिन्दुस्तान के जंगलों में उन्होंने अपनी इसी मौज-मस्ती के तरीके जारी रखे। यहां स्थानीय लोगों को गुलाम बनाकर या पैसे देकर जंगली जानवरों को, हो-हल्ला करके, लाट साहब की तरफ लाने के लिए मजबूर करते थे और स्वयं सुरक्षित ऊंचे मचान पर बैठे हुए लाट साहब बंदूक से जानवर का शिकार करते थे। यहां के छोटे-बड़े राजा-महाराजाओं ने अंग्रेजों के दबाव और प्रभाव में आकर अपने-अपने इलाकों के जंगलों को शिकारगाह बना दिया और फिर वे खुद तथा अंग्रेज साहब शिकार का खेल खेलते रहे। *भरतपुर के राजा के शिकारगाह में, जहां बहुत मात्रा में पंछी आते थे, वहां एक-एक दिन में हजारों की तादाद में पंछी बंदूक से मारे गये। उसका ब्यौरा वहां पत्थरों पर खुदा हुआ आज भी मिलता है।*

1885 में अलवर के महाराजा मंगलसिंह ने सरिस्का के जंगल को शिकारगाह घोषित कर दिया। इस क्रम में वहां से 20 गांव उन्होंने उठवा दिये थे। तब देवरी गांव का अपनी मातृभूमि के प्रति अडिग प्रेम देखकर महाराजा भी इस गांव को नहीं उठा पाये थे।

अंग्रेजों के आने से पहले, हिन्दुस्तान के जंगल यहां के स्थानीय लोगों की साझी संपदा थे। बिना किसी कानून से इन पर कब्जा करना अंग्रेजों को मुश्किल लग

रहा था। सन् 1875 में शिमला में हुई एक बैठक में अंग्रेज अफसरों ने लंबी चर्चा के बाद यह तय किया कि — 'विजेता का अधिकार सबसे ताकतवर होता है। इस अधिकार के विरोध में कोई अपील नहीं हो सकती।' (The right of the conquerer is the strongest of all rights. It is a right against which there is no appeal. The Unquiet Woods लेखक : रामचन्द्र गुहा)

और इस सोच के आधार पर वह जंगल शासन की मिल्कियत बन गया। गांवों के अपने जंगल अंग्रेजों ने छीन लिये और उन पर सरकार के कायदे-कानून लागू कर दिये। गांव का सामलाती जंगल लोगों के हाथ से जब निकल गया, तो गांव के पूरे व्यवहार में, उनके विचार और दृष्टिकोण में बदलाव की प्रक्रिया शुरू हुई। जंगल सरकारी बन गए। जंगली जानवर सरकारी बन गये। फिर वह जंगल उनका नहीं रहा, न उस जंगल को बचाने की, सुरक्षित रखने की जिम्मेदारी उनकी रही। रोजमर्रा की जरूरतों के लिए लोगों को जंगल से बहुत सारी चीजें लेनी ही पड़ती थीं। लोग मजबूरन अपने ही जंगल में चोर बन गये थे, तस्कर बन गये थे। अंग्रेजों का पूरा व्यवहार उपनिवेशवादी था। उनकी नज़र ज्यादा से ज़्यादा माल बटोरने पर थी। फिर यहां के संसाधन निरंतर रहें या न रहें, इससे उनको कोई मतलब नहीं था।

कई जंगलों को अंग्रेजों ने **रिजर्व्ड फॉरेस्ट** बनाया, तो और कई को **प्रोटेक्टेड फॉरेस्ट** बनाया। उन पर से लोगों के अधिकार खत्म कर दिये गये। आजादी के बाद स्वतंत्र भारत के वन विभाग ने जंगलों पर अपना अधिकार जमा लिया और धीरे-धीरे अपनी सीमा को बढ़ाते चला गया। ज्यादा से ज्यादा क्षेत्र पर अपना कब्जा जमाने की नीति उन्होंने अपनायी। सच देखा जाये, तो जब अंग्रेज यहां से निकाले गये, तो जंगल उसके असली मालिक को मिल जाना चाहिए था, पर वैसा हुआ नहीं बल्कि भारत सरकार ने और भी लूटपाट शुरू कर दी। आजादी के बाद जब राजा-महाराजा हटाये गये, तो उनके प्रदेश में जो जंगल बचा था, वह जंगल भी भारत सरकार ने खुद कब्जे में ले लिया, जैसे सरिस्का का शिकारगाह। स्वतंत्र भारत की सरकार ने वनवासियों से शुरू से ही बर्बर सलूक किया। पुराने वन कानून अमल में रहे। इन कानूनों के तहत स्थानीय लोग ही जंगल के पहले और सबसे बड़े शत्रु माने गये। जंगल ये ही काटते हैं, बर्बाद करते हैं, जानवरों का शिकार करते हैं – यही आज तक की मान्यता रही है। **वाइल्ड लाइफर्स** का भी यही दृष्टिकोण रहा। इतना ही नहीं, पूरे समाज की भी दृष्टि यही रही है। अगर वनवासी जनसमुदाय जंगल और जंगली जीवों का विनाश करते होते, तो आज जो जंगल बचे हुए हैं और उसमें रहने वाले जो जीव वहां मौजूद हैं, वे हो ही नहीं सकते थे। वनवासियों के प्रतिरोध और प्रयत्नों से ही ये बचे हुए हैं, वरना बहुत पहले खत्म हो जाते। पर अफसोस की बात है कि इस तर्क के पक्षधर समाज में नहीं के बराबर हैं।

वास्तव में जो जंगल को बर्बाद कर रहे हैं, उन्हें नजरअंदाज किया जा रहा है। जो वनवासी हैं, उनके घर एक तो छोटी-छोटी झुग्गी-झोंपड़ियों जैसे होते हैं। उनमें लकड़ी के अधिक सामान की गुंजाइश ही कहां होती है ? लेकिन शहरी धनाढ्यों, मध्यमवर्गीय घरों पर गौर करें तो वे फर्नीचर से पटे पड़े दिखाई देते हैं। जंगलों को लकड़ी की, टिम्बर की खान मानकर उसका मनमाना दोहन करने वालों ने ही जंगल नष्ट किये हैं।

आजादी के बाद जंगलात विभाग ने शुरू में कुछ जंगलों पर अपना अधिकार जमाया। फिर धीरे-धीरे अपनी सीमाओं को बढ़ाते गये। गांव तो अपनी जरूरतें पूरी किये बिना जी नहीं सकता था। निभाव के लिए भी उनको चोर बनना पड़ा। पूरे देश में हर एक जंगली इलाके में यही त्रासदी है। इस विषय पर वन विभाग से अगर चर्चा करें तो वे कहते हैं कि उनका क्षेत्र तो पहले से ही इतना था। *मेलघाट (महाराष्ट्र) के पहाड़ी क्षेत्र में वन विभाग ने अभयारण्य बनाया है, तो वैराट, पस्तलाई, चुर्णी ऐसे गांवों के पनघट भी उनसे छीन लिये गये। ये गांव पुराने जमाने से बसे हुए हैं। बिना पनघट के गांव खासकर के पशु-पालन करने वाले गांव पंगु हो गये हैं, लेकिन वन विभाग मानने के लिए तैयार नहीं है। लोग अपने पनघट पर आज नहीं जा सकते। जानवरों को लेकर पानी के लिये उन्हें दर-दर भटकना पड़ रहा है।* सरिस्का में भी जंगलात वालों ने यहां अपना पूरा अधिकार जमा लिया है। पहले तो देवरी के लोग काली घाटी तक अपने पशु चराने के लिए ले जाते थे, अपने पशुओं के लिए घास-पत्ते भी ले आते थे। लेकिन जब जंगलात का सिक्का चलने लगा, तो लोगों को अपने पशु चराने के लिए भी वन विभाग से परमिट बनवाने पड़े। पहले तो परमिट बनवाने के बाद ही लोग अपने पशु चरा सकते थे। अब वह भी नहीं कर सकते। आजकल तो काश्ताना भूमि पर भी जंगलात वालों का कब्जा होता जा रहा है और सरिस्का अभयारण्य का क्षेत्र बढ़ता ही जा रहा है।

हर अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान के जंगल से लोगों के अधिकार पूरी तरह से छीने जा रहे हैं और वह भी वन्य जीव-जंतु, वनस्थली के बचाव के नाम पर। *भरतपुर अभयारण्य में गांव के पशु खासकर भैंसें जब अंदर के दलदल वाले क्षेत्र में जाकर पानी में उगने वाली घास खाती थीं, तब वहां का पर्यावरण ठीक रहता था। लेकिन योजना बनाने वालों ने अपनी सोच से ऊँची दीवार बनाकर इन मवेशियों का अंदर आना रोक दिया, तो पानी में घास बहुत बढ़ने से पानी का बहना ही रुक गया। पानी का स्तर बढ़ गया। पहले पानी में जब गोबर पड़ता था, तो उससे पानी में बहुत कीड़े-मकोड़े पैदा होते थे। पंछी ये कीड़े-मकोड़े खाकर पलते थे, उन पंछियों का वहां आना बंद हो गया, तो*

भरतपुर अभयारण्य की शान ही चली गई। हिमालय में फूलों की घाटी की हकीकत ऐसी ही है। इस घाटी से हर साल जाड़े के दिनों में वहां के लोग अपनी मवेशियों को लेकर पहाड़ से नीचे की ओर चराते हुए लाते थे और गर्मी के दिनों में ऊपर की तरफ जाते थे। उनको जब बंद किया गया तो घास इतनी ऊँची और घनी हो गयी कि घाटी के फूलों के छोटे-छोटे पौधे दब कर मर गये, लेकिन ऐसी नसीहतों से भी वन विभाग की समझ बदली नहीं, न ही कथित ***वाइल्ड लाइफर्स*** *की।*

सरिस्का में शुरू में जंगलात वालों ने 20 गांव पर एक गार्ड रखा था। उसका इतना भय रहता था कि कोई भी हरे पेड़ नहीं काट सकता था और न ही जंगल को नुकसान पहुंचा सकता था। यह भी था कि लोगों की आदतें भी जंगल बचाने की थीं। इसलिए वे विनाशकारी काम नहीं करते थे, लेकिन जैसे ही देश में तथाकथित विकास का दौर चला, तो लकड़ी की जरूरत बढ़ गयी। जंगल पर कुल्हाड़ी चलने लगी। कई जगह विकास योजनाओं के तहत जंगल काटे जाने लगे। आज भी जंगलों का कटना अबाध गति से जारी है। ऊपर से विडंबना यह है कि इसका सारा दोष वनवासियों के मत्थे मढ़ दिया जाता है।

आज पूरी दुनिया में इन्सान के विचार में एक बड़ा बदलाव आ गया है। पहले दुनिया का केन्द्र इन्सान नहीं था, लेकिन इन बदले हुए विचारों में इन्सान दुनिया का केन्द्र बन गया है। इसके सुख-चैन, ऐशो-आराम, उपभोग के लिए ही दुनिया की सारी चीजें पैदा हुई हैं, ऐसी मान्यता है। बाकी की प्रजातियों का कोई भी अधिकार नहीं माना जाता। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला कानून आज दुनिया में प्रतिष्ठित हो रहा है। जीव-जंतु, वनस्पति, सारी कुदरती चीजें मानव के उपयोग की वस्तु बन गयी हैं। इसमें गरीब इन्सान, औरतें, बच्चे, दलित, आदिवासी आदि सभी शामिल कर दिये गये हैं। लकड़ी का भंडार, टिम्बर, कागज बनाने के लिए लुगदा, तरह-तरह की वन उपज, जड़ी-बूटियों, जैविक विविधता के (जिसमें वनस्पति तथा प्राणी-पंछी और सूक्ष्म जीव-जंतु भी गिने जाते हैं) प्राप्ति-स्थान, धनिकों के लिए पर्यटन- स्थल, मौज-मस्ती करने की जगह, जानवरों की खाल, सींग ही नहीं तो पूरा शरीर, ऐसी सारी चीजों का लूटे जा सकने वाला भण्डार बन गया है जंगल। इतना ही नहीं, पूरी दुनिया का पर्यावरणीय संतुलन रखने वाले, सारे प्रदूषण को सोखने वाले इलाके, कार्बन डाइआक्साइड को वनस्पति के रूप में बदलने वाले एक संयंत्र के रूप में भी जंगल को आज इन्सान देख रहा है।

वनवासियों के लिए जंगल माता का रूप है। वे उस परिवेश से बहुत संभाल कर व्यवहार करते हैं। *भीमाशंकर (महाराष्ट्र) के प्रदेश में हर गांव ने*

अपनी सीमा में देवराई (भगवान् के नाम पर रखा हुआ जंगल) का निर्माण, संरक्षण और संवर्धन किया है। हर देवराई के लिए प्रभावी नियम कानून बनाए हैं। कई देवराइयाँ एक हजार साल पुरानी भी हैं। देवराई में एक लता 24 इंच परिधि की है, जो एक हजार साल पुरानी होगी। सरिस्का के प्रदेश में देवबनी के जंगल को महाकाल आने पर भी हाथ लगाने की मुमानियत है। देवोरण्यों को तो महाकाल के कारण गांव छोड़ने की नौबत आ जाने पर भी हाथ नहीं लगा सकते। उसको तो शाश्वत आनुवंशिक-जीनपूल के नाते कभी भी काटना उचित नहीं है। ऐसे ही बिहार के आदिवासी क्षेत्र में उस ओरण को संभाला जाता है, जहां पूर्वजों को दफनाया गया था।

सरिस्का का जंगल पुराने समय से साधु-सन्तों का निवास रहा है। लोग भी जंगल और जंगली जीव-जन्तु के प्रति धार्मिक श्रद्धा रखते थे। कई जगह साधु-सन्तों ने अपना स्थान बनाया था। लोगों से चंदा जमा करके वहाँ कुएं खोदे थे। कुएं से पानी निकाल कर कुण्ड में डाल कर रखते थे। वहाँ जंगली जीव आकर आराम से पानी पीते थे। अभयारण्य बनाने के बाद वन विभाग ने उनको निकाल कर यह जगह कब्जे में ले ली। फिर वहां बना पर्यटकों के लिए केंद्र या जंगलात वालों का निवास-स्थान। वहां अब जंगली जीव-जन्तुओं का खयाल कौन रखेगा ?

सरिस्का में गर्मी के दिनों में बहुत सारे जलस्रोत सूख जाते थे। वन विभाग ने कई जगह पर जंगली जानवरों के लिये बांध बनाये थे लेकिन वे भी सूख जाते थे। कई जगह पर भूमिगत पाइपलाइन से पानी लाया जाता था और वन्य जीवों के लिए पानी का प्रबंध करने की कोशिश की जाती थी। कभी-कभी टैंकर से भी पानी लाना पड़ता था। काफी पैसे खर्च करके भी वन्य जीवों के लिए वन विभाग से कोई पर्याप्त सुविधा नहीं बन सकी थी।

जगह-जगह का जंगल का परिवेश बहुत कुछ अलग रहता है। पश्चिमी घाट जैसे क्षेत्र में सदाहरित वर्षा-जंगल है। मध्य प्रदेश के कान्हा के क्षेत्र में नमीवाला पतझड़ का जंगल पाया जाता है तो राजस्थान के सरिस्का जैसे कम वर्षा वाले क्षेत्र में रूखा पतझड़ का जंगल, जिसमें जंगल झाड़ीनुमा वन क्षेत्र नजर आता है। हर जगह की मिट्टी, तापमान, वर्षा, प्रदेश के ढलान से जुड़ा हुआ जंगल मिलता है, जिसमें अलग-अलग प्रजातियां पनपती हैं। हर जगह की प्रजातियों की अपनी खासियत होती है। वनस्थली की प्रजातियों से जुड़े हुए प्राणी-पंछियों की प्रजातियां मिलती हैं। और इन सब परिस्थितियों को अच्छी तरह से समझने वाला, उसका दोहन के साथ रख-रखाव करने वाला जनसमुदाय

होता है जो उसी परिवेश में अपना जीवनयापन, व्यवसाय, आरोग्य-सेवा, निवास सब का एक रूप खड़ा करता है और साथ-साथ उस परिवेश को बचाने का काम भी करता है । इसी के आधार पर यह 'परिवेश-जनसमुदाय' सदियों से अपनी संस्कृति बनाकर अपना अस्तित्व कायम रखता आया है ।

सरिस्का वन क्षेत्र में अति महत्त्व की वनस्पति व जीव-जन्तु प्रजातियाँ मिलती हैं । पेड़-पौधों की लगभग 1200 प्रजातियाँ यहाँ हैं । और जन्तुओं की पाँच सौ से अधिक प्रजातियाँ यहां हो सकती हैं, ऐसा अनुमान है । पेड़-पौधों-झाड़ियों-बेलों आदि की सैकड़ों जातियाँ यहां पर मिलती हैं । धोंख, सालार, खैर, तेन्दू, अर्जुन, ढाक, बेल, बड़, पीपल, गूलर, जामुन, आंवला, बबूल जैसी वनस्पति की कई प्रजातियाँ यहाँ ज्यादा मात्रा में पायी जाती हैं । इस क्षेत्र में रहने वाले लोग विशेषतया मीणा आदिवासी पेड़ों को अपनी धराड़ी (गोत्र का पवित्र पेड़) मानकर पूजते हैं । गुर्जर भी यहाँ के पेड़ों को अपनी उपजाति के कुल-वृक्षों के रूप में पूजा करते हैं तथा जंगली जीवों को भी अपने जैसा ही भगवान का बनाया हुआ मानकर उसकी सुरक्षा करते हैं ।

वन्य प्राणियों में भी यहाँ प्रचुर मात्रा में विविधता देखने को मिलती है । स्तनधारी वर्ग की लगभग 30 प्रजातियाँ तथा पक्षी वर्ग की 200 जातियाँ सामान्य रूप से दृष्टिगोचर होती हैं । सरीसृप वर्ग की भी कुछ जातियाँ जैसे साँप, गोह, व छिपकली आदि पायी जाती हैं । कीट-पतंगे बहुत हैं ।

उत्तर अरावली पहाड़ियों के पठारी क्षेत्र में स्थित सरिस्का वन क्षेत्र का अपना एक अलग ही पारिस्थितिक और जैविक महत्त्व है । यहाँ पर पायी जाने वाली वनस्पति और प्राणियों की विविधता के कारण ही बहुत पहले से समय-समय पर अलग-अलग नामों से इसका संरक्षित क्षेत्र घोषित हो जाना इसी तथ्य की ओर इंगित करता है । यह क्षेत्र वनों की अधिकता के कारण वर्षा, रेगिस्तान और जलवायु के संदर्भ में एक अहम भूमिका अदा करता है । हालांकि गत वर्षों में वनों की अन्धाधुन्ध कटाई एवं वन्य-जीवों के शिकार करने की प्रवृत्ति बढ़ने से इसकी पारिस्थितिकीय एवं जैविक महत्त्व में कमी आयी है । सरिस्का संरक्षित क्षेत्र में वन्य प्राणियों की कई महत्त्वपूर्ण एवं दुर्लभ प्रजातियाँ संकट में हैं तथा विलुप्त होने के कगार पर हैं ।

4

सीधा हुआ दुश्मन, कामयाब हुई जंग

देवरी में संघ के कार्यकर्ता पूरी ताकत लगाकर काम करने लगे थे। बच्चों के लिए स्कूल चलता था। गोवर्धनजी तो दिन-रात गांव वालों के साथ रहते थे। राजेन्द्रसिंहजी भी बार-बार वहां जाते थे। इससे लोगों को ताकत मिलती थी। लोग अब जंगलात वालों की तानाशाही बर्दाश्त नहीं करते थे। उनको रिश्वत, दूध, घी, मवेशी देना उन्होंने बंद कर दिया था। इससे वन विभाग गुस्से में था। किसी भी तरह से संस्था को यहाँ से हटाने का मन उन्होंने बना लिया था। पर वे तरह-तरह की तिकड़में करने और डराने-धमकाने की कार्रवाइयां करने के बाद भी कामयाब नहीं हो पाये। गांव वालों की संगठित शक्ति आर संघ के कार्यकर्त्ताओं के संकल्प ने उन्हें परास्त कर दिया।

1960 के दशक में देवरी के पहाड़ों पर वन विभाग ने कूप लगाकर पेड़ों की कटान की थी। एक-एक हिस्सा करके पूरे के पूरे पेड़ कटवा दिये थे। उस नंगे हुए नाजुक क्षेत्र की रक्षा तो नहीं ही की और नये पौधे बिल्कुल भी

नहीं लगवाये । पहाड़ नंगे हो गये थे । वर्षा का पानी पहाड़ों से सीधे और तेजी से नीचे आता था और काफी मात्रा में उपजाऊ मिट्टी को लेकर बह जाता था। गांव की खेती दिन-ब-दिन बर्बाद होती चली गई। पहाड़ों पर न पेड़ रहे, न घास, और न ही गांव में पीने के लिए पानी । लोगों को अपने जानवर लेकर गर्मी के दिनों में गांव छोड़कर जाना पड़ता था, इसलिए लोग बहुत परेशान और दु:खी थे । उनको बहुत कष्ट झेलने पड़ते थे । कार्यकर्ताओं ने लोगों का संगठन किया । गाँव को इकट्ठे बैठकर सोच-विचार करने के लिए प्रेरित किया। गाँव में लोगों ने ग्रामसभा में बैठना शुरू किया ।

गाँव की हालत पर जब ग्रामसभा में चर्चा शुरू हुई तो सारा चित्र स्पष्ट रूप से सबके सामने आ गया । गाँव की परिस्थिति कैसी है, वह वैसी क्यों है, पहले से ही ऐसी है या पहले अलग थी, ऐसे बहुत सारे सवाल और उनके जवाब सामने आने लगे । गाँव की परिस्थिति पहले बहुत अच्छी थी, जब पहाड़ों पर अच्छा घना जंगल था । वर्षा का पानी पहाड़ों से धीमी गति से नीचे बहता था । जमीन में छनकर नीचे नाले में मिलता था । नीचे नाले में जोहड़ का पानी रुककर कुओं में जमा होता था । गाँव के पशुधन को जंगल का चारा और जोहड़ के पानी का सहारा था, तो जीवन भी सुखी था ।

लोगों ने कहा ''जब से जंगल कट गया तब से हालात हर तरह से बिगड़ गये । हम जलावन की लकड़ी के मोहताज हो गये । घर बनाने के लिये लकड़ी दुर्लभ हो गई । पानी हमारी जमीन को बर्बाद कर रहा है लेकिन पीने के लिये नहीं मिल रहा है । इसके लिए हमें क्या करना चाहिये ?'' इस पर काफी विचार और बहस होने के बाद गाँव वालों ने अपने पुराने गंवई दस्तूर याद किये और गाँव के लिये कुछ नियम-कानून बनाये । ''हम अपने पहाड़ों की और जंगल की रक्षा करेंगे । किसी को भी पेड़ काटने नहीं देंगे । न हम काटेंगे, न बाहर वालों को काटने देंगे और न जंगलात वालों को काटने देंगे । हमारी मवेशी तय की हुई जगह पर ही चरेगी । बाहर के पशु यहां आने नहीं दिये जायेंगे । जंगल हमारा अपना है । हम जंगलात वालों को रिश्वत नहीं देंगे। न उनके डराने-धमकाने में आयेंगे । हम अपने जोहड़ की मरम्मत करके उसको ठीक करेंगे। हम में से जो भी गलती करेगा उसको दण्डित किया जायेगा । लेकिन जो व्यक्ति पता होने पर भी गलती की रिपोर्ट गाँव को नहीं देगा उसको ज्यादा दण्ड भरना पड़ेगा।''

देवरी की ग्रामसभा ने न सिर्फ अपने नियम-कानून बनाये बल्कि गाँव के निर्णय का बाहर भी प्रचार-प्रसार किया । कलेक्टर को उसकी जानकारी भेज

दी और कई अखबारों में छपवा भी दिया। इससे सरकारी कर्मचारी खासकर वन विभाग के लोग भड़क उठे। उन्होंने 4 लोगों का चालान कर दिया, इन लोगों के नाम सम्मन आये। लोगों को डर लगा। पहले ऐसा कभी नहीं हुआ था, यह नयी बात क्या है और इससे कैसे बचेंगे, इसकी लोगों को फिक्र हुई। गाँव ने तय करके गोवर्धनजी को राजगढ़ कस्बे की तहसील में जानकारी लेने को भेजा। कोर्ट में बाबू के पास जाकर गोवर्धनजी ने जानकारी लेनी चाही। वहां गोवर्धनजी को अपने एक बचपन के साथी, जिनके साथ उन्होंने पढ़ाई की थी, जगदीशप्रसाद गौतम मिले। वे वकील बनकर वहीं काम कर रहे थे। तब वन विभाग के 20 कर्मचारियों ने उनको घेर लिया और हथकड़ी भी लगा दी। गोवर्धनजी अकेले होते, तो संकट में पड़ सकते थे, लेकिन उनके वकील मित्र ने वन कर्मचारियों को रोका और कहा कि आप इस तरह कोर्ट के अन्दर किसी को हथकड़ी नहीं लगा सकते। वे वकील थे, इसलिए वन कर्मचारी भी हिचके गये, उन्होंने हथकड़ी उतार दी और बाहर निकल गये। बाबू ने बताया कि गोवर्धनजी पर जंगली जानवरों के सींग और खाल बेचने का आरोप लगाया गया है। जंगलात वाले गांव में हमेशा मनमानी, जोर-जबरदस्ती करते रहते हैं। लेकिन जंगल के बाहर किसी ने कायदे-कानून की बात की तो डर जाते हैं, क्योंकि उन्हें कायदे-कानून की कोई असली जानकारी तनिक भी होती ही नहीं। जंगल में रहने वाले लोग ज्यादातर निरक्षर हैं। वे कुछ जानते नहीं तो उनके सामने जंगलात वाले हमेशा शेर की तरह दहाड़ते हैं।

गोवर्धनजी को मालूम था कि जंगलात वाले निश्चित रूप से बाहर उनकी राह देखते होंगे। उन्होंने जगदीशप्रसाद को सारी हकीकत बता दी। जगदीशजी ने उनकी मदद की। कचहरी के अन्दर ही एक जीप में गोवर्धनजी को छुपाकर उन्होंने बाहर निकाल दिया। पहले तो जंगलात वाले सावधान नहीं थे, लेकिन उनको जब अंदाज हो गया तो उन्होंने पीछा शुरू किया। जीप पर जंगलात वालों को कुछ भी बरामद नहीं हुआ। वहाँ से 4 किमी की दूरी पर उमरैण गाँव के पास में नदी के किनारे गोवर्धनजी को उतार दिया और वे निकल गये। गोवर्धन पैदल चलकर चितोस गाँव में पहुँचे। वहाँ लोगों ने उनको सहारा दिया और दूसरे दिन मोटरसाइकिल से उनको गुर्जरों की लोसल गाँव में पहुँचा दिया। जंगलात विभाग का एक फ्लाइंग स्क्वाड गोवर्धनजी की तलाश में निकल पड़ा था। गोवर्धनजी जंगल के रास्तों से निकल कर देवरी पहुँचे। उसके पहले ही देवरी में यह खबर पहुँच गयी थी। देवरी के दो सौ लोग गोवर्धनजी की मदद के लिए ट्रैक्टर में बैठ कर राजगढ़ पहुँचे। उन्होंने जंगलात वालों का दरवाजा खटखटाया और पूछा कि उनके साथी को क्यों परेशान कर रहे हैं ? फ्लाइंग

स्क्वाड के 20 लोग दो महीने तक गोवर्धनजी के पीछे रहे, लेकिन वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ सके ।

वन विभाग बहुत भड़का हुआ था । कारिंदे, मन में बहुत चिंतित थे क्योंकि देवरी उनके लिए चारागाह जैसा बन गया था । वहाँ से वे हमेशा पैसे वसूलते थे । मौज-मस्ती करते थे । शराब-जुआ तो चलता ही था, पूरी मनमानी भी चलती थी। अगर देवरी गाँव हाथ से गया, तो बहुत नुकसान होगा और फिर दूसरे गाँव भी इस तरह से बिगड़ जाएंगे, तो मुश्किल होगी । इसलिए देवरी को पहले ही ठीक करना था । और इसके पीछे जो संस्था थी, उसको भी यहां से भगाना था ।

राजगढ़ में गोवर्धनजी को हथकड़ी पहनाने का काण्ड 25 मई 1988 के दिन हुआ था और वे हाथ से निकल गये थे । वन विभाग ने और एक चाल चली । उन्होंने राजेन्द्रसिंह और गोवर्धनजी दोनों पर दूसरा आरोप लगाया कि 13 मई 1988 के दिन दोनों ने देवरी में शिकार किया और वे खाल बेचने के प्रयास में थे । इत्तफाक से उसी दिन तरुण भारत संघ की एक बैठक हो रही थी इन्दोक गाँव के चिड़ावतों के गुवाड़ा में । ये दोनों वहाँ बैठक में थे और मजे की बात यह थी कि उस बैठक में एल.आइ.बी. पुलिस कक्ष के दो पुलिसकर्मी भी मौजूद थे । बैठक शुरू होने के पहले ही राजेन्द्रसिंह आदि को इनका पता चला था । लेकिन उन्होंने सोचा कि जब आये हैं, तो बैठने दो । उनको जो करना है वे करें । बैठक में कोई षडयंत्र तो रचा नहीं जा रहा है, तो क्या फर्क पड़ता है । जब यह आरोप पत्र मिला तो संघ के कार्यकर्ता सोच में पड़े कि इस मामले का किस तरह से जवाब दिया जाय । उसी समय अचानक याद आ गयी उन्हें एल.आइ.बी. वालों की । फिर पुलिस से रिपोर्ट हासिल करके कोर्ट में हाजिर कर दी, तो जंगलात वालों का असली रूप सामने आ गया और वे हतोत्साहित हो गये ।

अब देवरी के लोगों का आत्मविश्वास बढ़ने लगा । उन्होंने अपने जंगल के संरक्षण-संवर्धन का काम शुरू किया । उसकी गति और तेज़ हुई । हर माह अमावस्या के दिन ग्रामसभा की बैठक होती थी । उसमें बैठकर सोच-विचार, चर्चा करके गाँव के कारोबार की बात लोग करने लगे । गाँव ने तय किया कि जंगलात विभाग के किसी भी कर्मचारी को अब गाँव में रहने नहीं देंगे । इन्हीं से गाँव का माहौल बिगड़ता है । आज तक उनसे डरते रहे । उनको पैसे, घी, लकड़ी सब कुछ देते रहे । पैसे के लिए हमने अपना ही जंगल काट डाला । नुकसान तो हमारा ही हुआ । अब हम यह नहीं होने देंगे । गांव में नये बने दस्तूरों से गाँव का माहौल बदल गया । गाँव में नयी चेतना का संचार होने लगा । गाँव मानो अपने होश में आ गया । गाँव हो या इन्सान हो, जब होश में नहीं होता, तो न्याय-अन्याय समझ में नहीं आता ।

सरिस्का में मुख्यत: मीणा, गुर्जर और बलाई जाति के 98 छोटे-छोटे गुवाड़े **कोर जोन में** बसे हैं। ये खेती और पशुपालन का धन्धा करने वाले लोग छोटी-छोटी झोंपड़ी व घर बनाकर जंगलों में ही रहते हैं। ये स्वभाव से शाकाहारी, जंगल व जंगली जीवों को प्यार करने वाले लोग हैं। संरक्षित क्षेत्रों से ये केवल पशुओं के लिए चारा, घास, पत्ते लेते हैं। आज कोर क्षेत्र में तो यह कानूनी अपराध है। कानून के कारण ही यहां रहने वाले समुदाय और संरक्षित क्षेत्रों के मध्य एक संघर्ष की स्थिति पैदा हुई है। सरिस्का के अन्दर के गाँवों में शिक्षा व स्वास्थ्य की सुविधाएं पिछले लम्बे समय से नहीं हैं, क्योंकि सरकार इनको नाजायज बसावट और आबादी के रूप में देखती रही है। इसलिए जानबूझ कर इस क्षेत्र में शिक्षा व स्वास्थ्य की कोई व्यवस्था सरकारी तौर पर नहीं की गयी है।

इतिहास देखा जाये तो 1885 में सरिस्का शिकारगाह घोषित हुआ था। 1907 में सरिस्का पैलेस का निर्माण हुआ। 1927 में सरिस्का के अन्दर बसे 20 गाँवों को दूसरे स्थानों पर बसाया गया। उसी समय यहाँ पूंछी टैक्स (चराई कर) आरम्भ हुआ। सत्तर के दशक में बाघ परियोजना और अस्सी के दशक में राष्ट्रीय उद्यान हेतु प्रस्तावित किया गया। इस प्रकार सरिस्का की सीमाएं व कानूनी स्तर भी समय-समय पर बदलते रहे। लोगों की संगठन क्षमता और वन रक्षा संकल्प ने वन अधिकारियों को भी इनकी बात समझने के लिए प्रेरित किया। संवाद शुरू हुआ। वन अधिकारियों और तरुण भारत संघ के इस संवाद से चीजें यकायक नहीं बदल गयीं। पर इसने बीज का काम ज़रूर किया।

5

मिलकर सुलझाया विवाद

देवरी में लोग पोस्त (अफीम) का नशा करते थे। उससे नुकसान तो होता ही है, सोचने की शक्ति और इच्छाशक्ति भी प्रभावित होती है। आज देश की बहुत-सी जगहों में यही हालत है। गाँव-शहर मानो बेहोशी में हों। पैसा कमाने की धुन हर-एक पर हावी हो गयी है। सभी अपनी तरक्की करने के जुगाड़ में फंसे हैं। किसी को भी पूरे इलाके के बारे में बात करने की इच्छा ही नहीं है। नशे के लिए बहुत सारी चीजें भी उपलब्ध हैं। अफीम, गांजा, चरस, ड्रग्स, फिर शराब, गुटखा (ये तो बच्चे, औरतें सब के लिये आसानी से उपलब्ध हैं)। फिर आते हैं जुआ, मटका, लॉटरी। इससे भी बढ़कर असर हो रहा है दूरदर्शन का और बाजार की चीजों का। किसी को सोचने की इच्छा नहीं है, न समय है, न माहौल है। इसके लिए कोई एक मंच भी नहीं है। समाज के बारे में सोचने के लिए समुदाय की जरूरत होती है। समाजसेवी संस्थाओं का काम है लोगों को होश में लाना, समुदाय में बैठकर सोच-विचार करना, समुदाय के लिए नियम-कानून बनाना और अमल में लाने के लिये चेतना पैदा करना। **तरुण भारत संघ** ने देवरी में यह प्रक्रिया शुरू की।

1985 में **तरुण भारत संघ** के चार कार्यकर्ता भीकमपुरा-किशोरी में आकर बैठ गये थे। तब इस पूरे इलाके की हालत काफी बदहाल थी। पूरे इलाके में पानी की समस्या विकराल रूप धारण करके खड़ी थी। 1986-87 का वर्ष इस इलाके में भयंकर अकाल का था। लोग गाँव छोड़कर भाग रहे थे। कुएं व जोहड़ सूख गये थे। चारों तरफ त्राहि-त्राहि मची हुई थी। लोगों को न पीने का पानी मिलता था, न एक समय की रोटी। युवकों के शादी-विवाह बंद होने लगे थे। वे बड़े शहरों की तरफ भाग रहे थे। गाँव में शेष रहे बूढ़े-बच्चे और महिलाएँ कुपोषण के शिकार होकर अशक्य हो गये थे। महिलाओं का ज्यादातर समय इधर-उधर से पानी का जुगाड़ करने में बीतता था। ऐसी स्थिति में संघ ने उम्मीद की किरण तलाशनी शुरू की। गाँव के बुजुर्गों के साथ बैठकर चर्चा शुरू की। गंवई दस्तूरों का अध्ययन शुरू किया। तब उनको पता चला कि इस कम वर्षा वाले क्षेत्र में पुराने जमाने से पानी को जमा करने और धरती के पानी को पुनः परिपूर्ण करने की एक कारगर व्यवस्था थी। गोपालपुरा संघ के आश्रम के पास का गाँव था। वहाँ के लोगों का आश्रम में काफी आना-जाना था। कार्यकर्ता भी वहाँ हमेशा जाते थे। संघ ने लोगों को संगठित करके वहाँ ग्रामसभा गठित की। लोग इकट्ठे बैठकर गाँव की परिस्थिति के बारे में सोचने लगे। लोगों को याद आया कि पुराने जमाने में गाँव वाले मिल कर जोहड़ों की मरम्मत करते थे। जब तक जोहड़ ठीक थे, गाँव की पानी की व्यवस्था ठीक थी। लेकिन लोगों को यह विश्वास नहीं रहा था कि वे अपने जोहड़ का काम फिर कर सकेंगे। संघ ने लोगों के साथ बैठकर योजना बनाने का काम शुरू किया। जोहड़ की जगह, चौड़ाई, लंबाई, पूरा नियोजन गांव के लोगों और संघ के कार्यकर्ताओं ने मिलकर किया। संस्था ने पैसे जुटाये। गाँव के लोगों ने भाग लिया और कुछ हद तक श्रमदान भी किया। जोहड़ पूरा होने के बाद जब वर्षा का पानी उसमें भर गया, तो नीचे के कुएं सजल हो गये। इस अनुभव से गोपालपुरा में एक चेतना आयी। खेती को सींचने के लिए पानी मिला। खेती फिर शुरू हो गई। पेड़ हरे-भरे हुए।

1986 में 30 जनवरी से 12 फरवरी तक संघ ने आस-पास के गाँवों में एक पदयात्रा आयोजित की। यह पदयात्रा जोहड़ों की संभावना देखने के लिए और लोगों में इस विषय पर जाग्रति पैदा करने के लिए आयोजित की गयी थी। गाँवों ने काफी उत्साह दिखाया। गोपालपुरा की सफलता देखकर दूसरे वर्ष सरिस्का के बफर जोन का गाँव मांडलवास उसी राह पर चल पड़ा। उसके आगे देवरी ने तैयारी की। जोहड़ का काम अच्छा हो रहा था। लोग उसमें दिलचस्पी भी ले रहे थे। लेकिन स्वयंसेवी संगठनों का काम इतना आसान नहीं होता। गोपालपुरा में जोहड़ बनाने के दो साल के भीतर सिंचाई विभाग ने उन्हें तोड़ने के नोटिस दे दिये। लेकिन गाँव का संगठन मजबूत था। सिंचाई विभाग कुछ नहीं कर पाया।

दिसंबर 1988 में तत्कालीन प्रधान मंत्री राजीव गांधी ने सरिस्का में अपने मंत्रिमंडल की बैठक की। इस दौरान संघ ने उन्हें इलाके की समस्याओं और जिला प्रशासन के रवैये के बारे में ज्ञापन दिया। इसमें वन विभाग का भ्रष्टाचार रोकने की प्रार्थना भी शामिल थी। जिला प्रशासन इस बात से बेहद दुखी हो गया। कलेक्टर ने गोपालपुरा के जलागम क्षेत्र में से पेड़ कटवा कर वहाँ भूमिहीन बंधुआ मजदूरों के परिवार बसाने की कार्यवाही की। काफी तनाव, बहस और संघर्ष के बाद यह मामला सुलझ गया कि इससे ज्यादा परिवारों को भविष्य में नहीं बसाया जाएगा।

वन विभाग की भ्रष्टाचार की बात करने से वन विभाग भड़क गया। उन्होंने कहना शुरू किया, सरिस्का में बसे हुए देवरी जैसे गाँव पूरी तरह से नाजायज हैं। उनको उठाना ही पड़ेगा। उनके लिए शिक्षा एवं स्वास्थ्य के कोई भी कार्यक्रम चलाने की अनुमति नहीं मिल सकती। इस इलाके में राष्ट्रीय उद्यान में, कानून के मुताबिक, कोई नहीं रह सकता। इन गाँवों को उठाना ही होगा।

देवरी में ग्रामसभा का काम अच्छी तरह से शुरू हो गया था। लोगों ने गाँव का कारोबार हाथ में लेकर काम शुरू कर दिया।

सरिस्का में रहने वाले जनसमुदाय व प्राकृतिक परिवेश और जंगली जीवों का परस्पर गहरा और जैविक रिश्ता है। सदियों से एक-दूसरे के साथ इनका जीवन जुड़ा हुआ है। ये सहजीवी हैं। एक-दूसरे के अभ्यस्त। अगर बाघ ने उनके जानवर को मार भी दिया, तो उन्होंने बाघ को कभी मारा नहीं। यहाँ के लोगों की मूल आस्था है कि ''जंगली जीव व उनके पालतू पशु एक ही भगवान् के बनाये हुए हैं इसलिए इन्हें मारना अच्छा नहीं है''।

आजादी के बाद भारत सरकार के वन विभाग में जो बदलाव होने चाहिये थे, वे नहीं हुए। वन विभाग की वन नीति वैसी ही उपनिवेशवादी और व्यापारी-पूंजीवादी प्रवृत्ति की बनी रही है। लोगों पर विश्वास की तो बात ही नहीं हो पायी। लोगों को जंगल का दुश्मन घोषित कर दिया गया। वन विभाग ने स्थानीय लोगों की जरूरतों की आपूर्ति अधिकारों में मानी नहीं। जो अधिकार थे, उनको सहूलियत में बदला गया और ये कभी भी हटाई जा सकती हैं, यह इशारा लोगों को बार-बार दिया गया। लोगों के अधिकार रद्द कर दिये गये। सहूलियतों को नकार दिया गया। संरक्षित क्षेत्रों यानी अभयारण्यों एवं राष्ट्रीय उद्यानों से लोगों को हटाया गया, विस्थापित किया गया।

मूलत: सरिस्कावासियों व यहाँ के जंगली जीवों तथा जंगल के मध्य तनाव का जो एक कारण नजर आता है वह यह है कि जंगल व जंगली जीवों के संरक्षण

के नाम पर बने कानून ने जंगल व जंगली जीवों को सरकार की संपत्ति बना दिया है। जबकि ये दोनों तथा मानव एक ही धरती के बनाये हुए हैं। परन्तु कानून से वनवासी को सरकार ने अपना नहीं माना। इसलिए उक्त दोनों तथा ग्रामवासी अलग-अलग हो गये। इससे वनवासियों के मन में जंगल व जंगली जीवों के प्रति पहले जैसा लगाव नहीं रहा है, बल्कि कभी-कभी इससे विरोधी भाव भी पैदा होते हैं।

तनाव का दूसरा आधार यह है कि बाघों की संख्या कम हो जाने के कारण नीलगाय, चीतल व सूअर आदि की संख्या में काफी बढ़ोतरी हुई है, जो किसानों की फसल को नुकसान पहुँचाते हैं। इससे संघर्ष की स्थिति बढ़ रही है।

तीसरा प्रमुख बिंदु यह है कि संरक्षण के नाम पर बनाये गये 'वन विभाग' के अधिकारी व कर्मचारी जंगल और जंगली जीवों को अपनी बपौती मानकर दादागिरी चलाते हैं जिससे लोगों के मन में इनके प्रति असंतोष बढ़ता रहता है। वनकर्मी अपनी इच्छापूर्ति नहीं होने पर झूठे चालान भी कर देते हैं जिससे लोगों का असंतोष गहराता ही जाता है।

सरिस्का के रहवासी शांतिप्रिय जनसमुदाय हैं। बहुत हद तक जुल्म सहते रहते हैं। हर जगह जंगल में रहने वाले लोगों में यही पाया जाता है। इस कारण इन पर अन्याय-अत्याचार अंग्रेजों के जमाने से बहुत हुए हैं। देवरी, हरिपुरा, राडा, गुर्जरों की लोसल, गोपालपुरा आदि गाँव के रहवासियों और **तरुण भारत संघ** ने मिलकर यह कोशिश की है कि शांतिमय मार्ग से काम करेंगे। इसलिये उन्होंने सोचा कि अगर प्रधान मंत्री सरिस्का में आ रहे हैं तो इनको ज्ञापन देकर अपना दु:ख-दर्द बतायेंगे और अन्याय-अत्याचार रोकने के लिए प्रार्थना करेंगे। अनपढ़ और पिछड़े माने जाने वाले जनसमूहों के लिए यह बहुत महत्त्व का कदम था। उनको यह मालूम था कि इसके कारण अधिकारी संतप्त होंगे तो उनका सामना करना पड़ेगा, और यह करना भी पड़ा।

जो ज्ञापन प्रधान मंत्री को दिया था, उसके परिणाम से भारत सरकार के निर्देशानुसार अधिकारियों की जाँच शुरू हुई। वन विभाग में मिलीभगत से काटे गये पेड़ों तथा बाघ मरवाने की घटनाओं का रहस्य खुल गया। दोषी अधिकारियों का तबादला हुआ। जो नये अधिकारी आये, उनसे संघ ने संपर्क और संवाद शुरू किया। नये अधिकारियों से संघ के अच्छे संबंध स्थापित हुए।

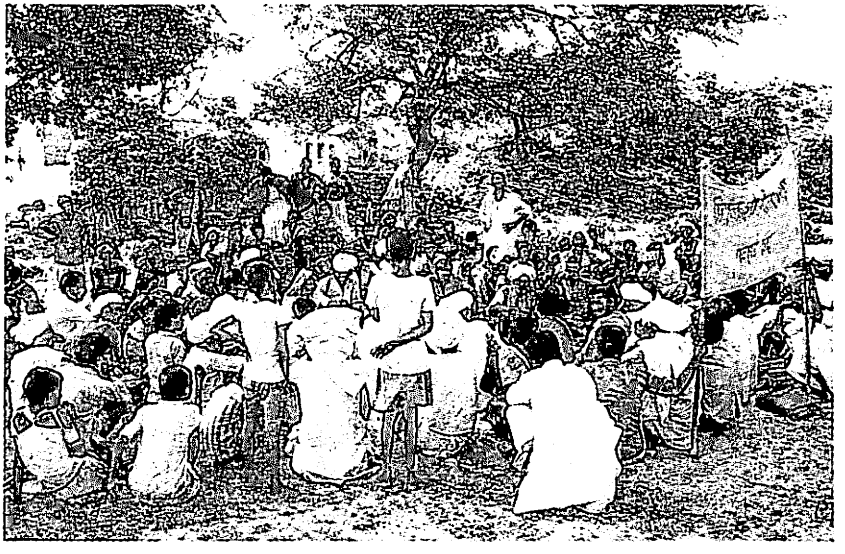

6

सामलातदेह के पुनर्जीवन का संकल्प

गाँव वालों ने जंगल और अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई छेड़ने का संकल्प लिया। दोनों के हित तो जुड़े हुए ही हैं। देवरी गाँव ने इस पर पहल की। गंवई दस्तूरों की याद करके उनको फिर से काम में लाया गया। यह काम दोतरफा था। एक तरफ वन विभाग से संघर्ष करना था, तो दूसरी तरफ रचना और संरक्षण का काम शुरू करना था। संघ की प्रेरणा से देवरी की ग्रामसभा ने तय किया कि जंगल विभाग के कर्मचारियों को रिश्वत देना बंद किया जाये, और गाँव वाले खुद गाँव के वनों की रक्षा करें। गाँव के सामलाती सामुदायिक संसाधनों को पुनर्जीवित करें। सामलातदेह ग्रामीण व्यवस्था का आधारभूत ढांचा है। इससे पूरे गाँव की गर्भनाल जुड़ी होती है। उनके रख-रखाव से गाँव के अमीर-गरीब सब का भला होता है। लेकिन इनके नष्ट होने का सबसे ज्यादा दुष्प्रभाव गरीबों पर होता है। सामलातदेह अकाल व बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं के खिलाफ गाँववासियों का कवच भी है और उनके सामाजिक, आर्थिक जीवन की धुरी भी।

अंग्रेजों के जमाने से सामलातदेह की व्यवस्था में बिगाड़ आना शुरू हुआ था। आजादी के बाद तो सामलाती संसाधनों, खासकर के जंगलों, पर स्थानीय लोगों के हक तो नकारे ही गये हैं। वन कानून, भूमि संपादन कानून, भूमि सुधार, विकास, खेती के आधुनिकीकरण के कारण से गाँवों के गंवई दस्तूर व सामलातदेह नष्ट हो रहे हैं। एक तरफ कानूनी तरीके से सामलातदेह का विनाश हो रहा है, दूसरी तरफ गैरकानूनी तरीके से भी ये पूरी तरह नष्ट हो रहे हैं। गांव के बड़े, अमीर, सत्ताधारी लोग गाँव का जंगल, गोचर, सारी सामलाती जमीन अपने कब्जे में ले रहे हैं। सरकारी कर्मचारी तथा अधिकारी जैसे उनकी जेब में रखे हुए हैं जो मर्जी आये वे उनके माध्यम से करते हैं, सारे छोटे-बड़े कर्मचारी बिल्कुल उनकी मदद के लिये तैयार हैं। अगर कुछ थोड़े सामलाती संसाधन बचे भी हैं, तो सामुदायिकता खत्म होने के कारण वह भी संरक्षण के मोहताज हैं।

देवरी में सबसे पहले कारोजवाला जोहड़ तरुण भारत संघ की मदद से बन गया। जुलाई में वर्षा होते ही जोहड़ पानी से भर गया। इसके रिसाव से कुएं सजल हो गए। लोग गाँव की ओर लौटने शुरू हो गये। इस बार ऐसे लौटे कि फिर कभी बाहर जाने की नौबत ही नहीं आयी। अब यहाँ के लोगों को जल व जंगल संरक्षण का फायदा समझ में आ गया है। गाँव में जंगल बच गया तो पशुओं को चारा मिलने लगा। गाँव वालों ने वन विभाग के कर्मचारियों को सालाना हजारों रुपये, अनाज, दूध, घी और मवेशी देना बंद कर दिया। ग्रामसभा में वन काटने पर पाबंदी लगा दी गयी। जो कुल्हाड़ा लेकर जंगल की तरफ जाएगा, उस पर 10 रुपये जुर्माना होगा और जो पेड़ काटेगा, उस पर 51 रुपये। यह जुर्माना ग्रामसभा कोष में जमा होगा और उससे नये पेड़ लगाये जायेंगे। देवरी का पूरा माहौल बदल गया। लोगों में जाग्रति आ गयी। वन-विभाग के कर्मचारियों को गाँव में तरजीह मिलना बंद हो गया। उनको पैसा-कौड़ी, रिश्वत सारी चीजें मिलनी बंद हो गयीं तो उनका आना-जाना भी बंद हो गया।

देवरी का उदाहरण देख कर कई गाँवों ने अपने-अपने गाँव में ऐसे ही कानून बनाये और अपना जंगल बचाने का काम शुरू किया। लेकिन अगल-बगल के गाँव, जहाँ संघ का काम नहीं था, वहाँ के लोग यह बात मानने के लिये तैयार नहीं थे। उससे गाँव-गाँव में झगड़ा होने का डर था। इसलिए संघ ने पदयात्राएं और पर्यावरण यज्ञ वगैरह आयोजित किये। इसका अनुकूल असर पड़ा। दूसरी तरफ जंगलात वालों की रिश्वतखोरी बंद हो गयी, तो वे बौखला गए। गाँव वालों ने जंगल काटना बंद किया था, इसलिए वे कानूनी पकड़ में भी नहीं आ पाते थे। फिर भी झूठे मुकदमों में गाँव वालों को फंसाना जारी रहा। रात में वन विभाग के कर्मचारी देवरी में पहाड़ी

पर चढ़कर गाँव पर पत्थर बरसाते थे। उनके मन में था कि गाँव के लोग डर कर संघ का साथ छोड़ देंगे। खुद भी गाँव छोड़ कर भाग जायेंगे। फिर जैसे पहले चल रहा था, वैसा शुरू हो जायेगा। अपनी मौज-मस्ती, शराब, रिश्वत फिर से शुरू हो जायेगी। वन विभाग ने हर तरह से गाँव का संगठन तोड़ने की कोशिश की। अंततः गाँव वालों ने जंगलात विभाग के उच्चाधिकारियों को बुलाया। तत्कालीन सरिस्का राष्ट्रीय उद्यान के क्षेत्र निदेशक सुनयन शर्मा खुद गाँव में आये। उन्होंने गाँव वालों द्वारा जंगल बचाने के लिए किये हुए प्रयास देखे। उससे काफी प्रसन्न हुए और उन्होंने गाँव वालों को भरोसा दिलाया कि अब इस तरह के मुकदमे वापस ले लिये जायेंगे और गाँव वालों से कहा कि वे कोर्ट में हाजिर होकर अपनी बात कह दें। कोर्ट में जंगलात विभाग के कानूनी सलाहकार ने गाँव वालों को 51 रुपये जमा कराने को कहा - बताया कि यह फीस है। बाद में जब एक अखबार से मालूम पड़ा कि यह दण्ड था, तो लोग बहुत नाराज हुए। बात आगे बढ़ती ही गयी। 2 दिसम्बर 1992 के दिन गाँव के साठ वर्षीय भगवान् सहाय गुर्जर, जो पिछले 4 साल से जंगल बचाने का संकल्प लिये हुए थे, को टेहला रेंज के अधिकारी ने बुरी तरह से पीटा।

जंगल विभाग से संघर्ष तो जारी था ही लेकिन जबसे जोहड़ का काम शुरू हुआ, लोगों को अपने पुराने दस्तूर अच्छे लगने लगे और गाँव संगठित होकर कुछ कर सकता है, इस पर विश्वास भी जमने लगा। उन्होंने जल व जंगल संरक्षण की एक महत्त्वाकांक्षी योजना बनाने की सोची। संघ के साथ गाँव वालों ने मिलकर योजना बनायी।

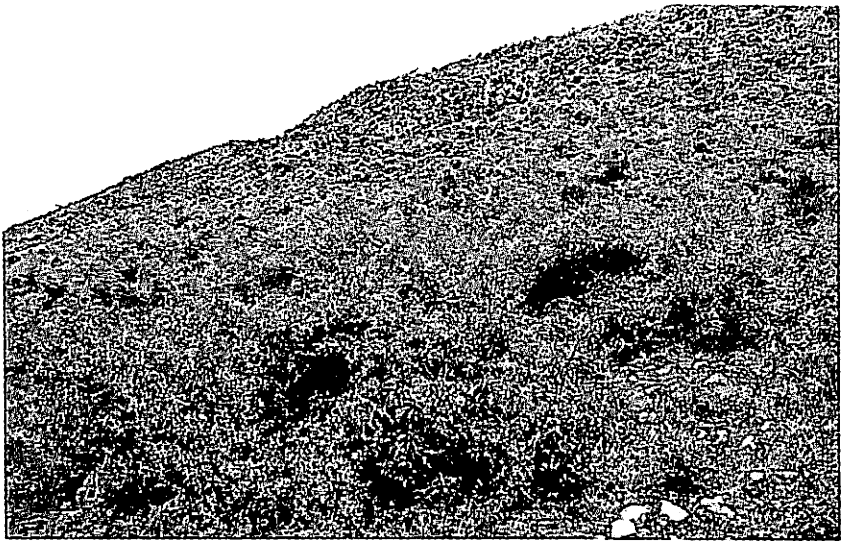

7

फिर से हरा हुआ देवरी

संघ और देवरी के लोगों ने साथ बैठकर योजना बनायी। उसके अनुरूप काम शुरू किया। यहाँ के पानी की गति रोकने के लिए उसमें छोटे-छोटे पचास बांध (Gully-plugs) बनाये गये। पर्वत-शिखर क्षेत्र में अगर जंगल नहीं है, तो ऐसे बांध पानी की गति को कम कर भूक्षरण को रोक सकते हैं और वहाँ फिर से पेड़-पौधों का उगना आसान हो जाता है। फिर जोहड़ों की बात आयी। इसके लिए जहां पानी रोकने के लिए नैसर्गिक जगह हो, वहाँ मिट्टी-पत्थर के बंधे बनाये जाएं। इस इलाके में जोहड़ बनाने की पुरानी परंपरा है। हर एक गाँव इस तकनीक की जानकारी रखता है।

गांव वालों ने उपयुक्त जगह, उसकी नींव की और बांध के ऊपर की चौड़ाई, ऊंचाई, पानी के लिए बाहर जाने का मार्ग सारी बातें तय की। पूरा श्रम ग्रामवासियों ने किया। कोई भी मजदूर या ठेकेदार बाहर से बुलाया नहीं गया। यह बात ऐसे कामों में बहुत मायने रखती है। गाँव के लोग अपना श्रम तो देते ही हैं, साथ ही वे यह भी ध्यान रखते हैं कि काम अच्छा हो ताकि टिकाऊ बन सके। कई बार यह देखा

गया है कि जब ठेकेदारों को काम सौंप दिया जाता है, तो गाँव के लोग भी लापरवाह हो जाते हैं। सरकारी काम खासकर ठेकेदार के हाथ में ही दिया जाता है। ठेकेदार बाहर से मजदूर लाता है। उसके लिए सिर्फ पैसे का महत्त्व होता है। काम कैसा भी हो, उसका कुछ नहीं बिगड़ता। ऐसे किये हुए काम बहुत बार बेकार ही हो जाते हैं। और सारा पैसा, श्रम और किया हुआ नियोजन बेमतलब का हो जाता है। स्वयंसेवी संस्था जहाँ-जहाँ यशस्वी होती है, वहाँ गौर से देखें तो इन चीजों पर ध्यान दिया हुआ दिखाई देता है। इसमें लोकतांत्रिक ताकत भी खड़ी रहती है। स्थानीय लोग काम करने के साथ-साथ उस पर निगरानी भी रखते हैं। अगर कुछ गलत हो रहा है, तो वे ठीक भी करते हैं।

जोहड़ बनने के बाद उसकी मरम्मत का काम गाँव करता रहता है। इसका पूरा तंत्रज्ञान उन्हें विरासत में मिला है तथा उनके पास है। इसलिए अगर गाँव का संगठन अच्छा बना है तो जोहड़ जैसी पारंपरिक व्यवस्था चिरस्थायी बन जाती है। जोहड़ में जमा हुए पानी से आसपास की भूमि में नमी रहती है और नजदीक के कुओं में पानी भरपूर रहता है। पानी जोहड़ में एक बार भर गया, तो अगले 1-2 साल तक अकाल के संकट को भी गाँव झेल सकता है। ऐसी जोहड़ियाँ देवरी में बनायी गयीं। पहले बना कारोजवाला जोहड़ और वर्षा होने के बाद जब इसमें पानी भर गया और फिर पास के कुएं पानी से लबालब भर गये, तो देवरीवासी फूले न समाये। आगे के काम के लिए वे अधीर हो उठे। फिर रामसागर, कालाखेत, सुर्जावाला, बलखण्डा में पांच जोहड़ जल्दी ही बन गये। जोहड़ों के साथ-साथ और पक्के बाँध बन गये। इन सब बांधों से देवरी का पूरा रूप ही बदल गया। गाँव के 17 कुएं पानी से पूरे भर गये। खेती में दो फसलें आसानी से होने लगीं। पहले कार्यकर्ताओं को देवरी के लोगों की गरीबी देखकर कुछ भी उम्मीद नहीं थी। लेकिन जैसे-जैसे काम आगे बढ़ा, लोगों का श्रमदान का उत्साह बढ़ता गया। लोगों ने पूरी योजना में कुल मिलाकर 9 लाख रुपयों का श्रमदान किया। 1994 के अंत में गाँव के 17 कुओं में पानी आ गया था। कई कुओं पर दो-दो डीजल इंजन काम करते हैं, तो भी पानी घटता नहीं। गोबर की खाद की तो देवरी में कभी कमी थी ही नहीं, बस सिंचाई के लिए पानी की कमी थी। अब खेत ऐसे हरे-भरे रहते हैं कि देख कर मन में संतोष और शांति होती है। पहाड़ सारे जंगल से ढक गये हैं। मिट्टी और पानी बचाने का काम ढंग से हो गया है। जब खेती का उत्पादन बढ़ा, तो जो लोग पेड़ काटकर जीविकोपार्जन करते थे, खेती के कार्य में लग गये और जंगल बच गया। देवरी में संघ के काम में महिलाएँ भी बहुत सक्रिय रूप से शामिल थीं। यहाँ की महिलाएँ घर का पूरा काम करती हैं। गाँव की संपति बाई ने अपने

मन की बात सबके सामने रखी कि हमने अपने पीने के पानी के लिए और अपनी मवेशियों के लिए पानी की अच्छी और पर्याप्त व्यवस्था कर ली है। लेकिन जंगल के जानवरों के लिए कुछ नहीं किया। क्यों न हम सिर्फ जंगली जानवरों के लिए पीने के पानी का प्रबंध करें। बात बड़े पते की थी। शायद शहरवासियों को यह अजीब और बेमतलब की लगे, लेकिन वनवासियों का जंगल और जंगली जीव-जंतु के लिए प्यार बहुत गहरा होता है। *मुझे याद है, एक बार भीमाशंकर के इलाके में महिलाओं के एक शिविर में हम लोग एक खेल खेल रहे थे। खेल में हर एक को अपने मन का कोई एक सवाल सबके सामने रखना था। बालवीर वाड़ी की दुर्गा ने सवाल पूछा था ''गर्मी के दिनों में जब पानी कम हो जाता है तो कहीं से भी पानी जुगाड़ करके हम अपने घरों के लोगों की जरूरत पूरी करते ही हैं। हमारी मवेशियों को दूर भी ले कर दिन में एक बार तो हम पानी पिलाते ही हैं। लेकिन ये जो जंगल के प्राणी-पक्षी हैं, उनको पानी कौन देगा ?'' दुर्गा का सवाल सुन कर बाकी की महिलाओं को कोई आश्चर्य नहीं हुआ क्योंकि वे खुद भी आदिवासी थीं। उनके मन में भी तो यह आता ही होगा। लेकिन हम तो जंगलवासी नहीं थे, हमारे मन में वह सवाल हमेशा के लिए बैठ गया।* इनके जंगल-प्रेम की गहराई हमारी समझ में आ गयी।

संपति बाई का सवाल गाँव वालों ने गंभीरता से लिया। गाँव का प्रमुख नाला पूर्व से पश्चिम की तरफ बहता है और थोड़ा दक्षिण की तरफ मुड़ कर पहाड़ के नीचे उतर कर चला जाता है। इस आखिर के हिस्से को जहाज के नाम से जाना जाता है। यहाँ गाँव की मवेशी चरने के लिए जाती थी। यह जगह गाँव से दूर एकान्त में है। यह जगह बांध के लिए तय हुई। यहाँ रात में जंगली जानवर पानी पीने के लिए जायें तो गाँव को उससे ज्यादा तकलीफ नहीं होगी। जंगली जानवरों के प्रति लोगों को प्यार है तो कोई तकलीफ मानते भी नहीं। भीमाशंकर के आहुपे गाँव की देवराई हमारे एकजुट संगठन के कार्यकर्ताओं ने ठेकेदार के हाथ से छुड़ायी थी। उसके बाद एक दिन हम देवराई के पास गुआड़े में गये थे। वहाँ शांताबाई अपने अनाज की रक्षा कर रही थी और बंदर आकर अनाज चुराकर खाने की कोशिश में थे। देवराई का जंगल पास में होने से इस गुआड़े को जंगली जानवरों से काफी तकलीफ झेलनी पड़ती है। हमें लगा अब शांताबाई हमें गालियां सुनायेगी। लेकिन हमें देखकर वह बोली, ''अगर संगठन ने यह देवराई नहीं बचाई होती तो ये सारे बंदर और जानवर बेचारे कहाँ जाते ?'' इनका जंगली जानवरों के प्रति प्यार देखकर हमने काफी सबक सीखे हैं।

बांध का काम 1993-94 में पूरा हुआ। यह काफी लंबा-चौड़ा तालाब बन गया है। इसके आसपास बाघ, बघेरा, चीतल, नीलगाय, आदि जानवरों के पैरों के निशान आसानी से नजर आते हैं। गाँव के वन्य जीव-प्रेम का यह प्रतीक है। साथ ही तरुण भारत संघ की पर्यावरणीय सोच का भी मैं इसे प्रतीक मानती हूँ।

देवरी जलागम क्षेत्र विकास के कार्यक्रम का एक बड़ा लाभ समझ लेना बहुत जरूरी है। गली प्लग, जोहड़, एनीकट और जंगल बचाव के काम का परिणाम यह हुआ कि पूरी जल व्यवस्था ठीक हो गयी। उससे देवरी का नाला बारहमासी हो गया, जो पहले वर्षा के तुरंत बाद सूख जाता था। इसका लाभ नीचे के गांव देवरी, मुरलीपुरा, चावों का बास, नायला, राडा, नाडू, राडी आदि गाँवों को हो रहा है। इन गाँवों का रूप इससे बदल गया है। यह क्षेत्र हरा-भरा होने लगा है। जंगली जानवरों के लिये जगह-जगह पर पानी पीने के लिये जगह बन गई है। बड़े बांध बनते हैं तो बहुत बार नीचे का नदी का क्षेत्र सूख जाता है और सारा पानी नहर में चला जाता है। लेकिन इन छोटे बांधों से यह नाला बारहमासी हो गया। बहते हुए पानी से गाँव को जो लाभ होते हैं, उन्हें गाँव वाले अच्छी तरह से जानते हैं। ये लाभ केवल भौतिक ही नहीं अपितु सामाजिक, सांस्कृतिक और मानसिक भी होते हैं। ये एक सुविधा और सुरक्षा का माहौल पैदा करते हैं खासकर के औरतों और बच्चों के लिए।

देवरी के लोगों को और संघ को वन विभाग के साथ कड़ा संघर्ष करना पड़ा था। वन विभाग **कोर** और **बफर** क्षेत्रों के गाँवों को सरिस्का उद्यान से हटाना चाहता था। संघ का इरादा अलग था। जंगल और जंगली जीवों को बचाने का काम तो वहाँ के लोग ही कर सकते हैं, यह संघ की निष्ठा है। देवरी के काम की एक प्रमुख प्रेरणा थी - विस्थापित होते लोगों को वहीं रोककर उनको वन प्रबन्धन के कार्य में लगाना। उनके लिए आजीविका की ऐसी व्यवस्था करना, जिससे उनकी जरूरतों की आपूर्ति भी हो और जंगल भी बचे। इसी से संयुक्त वन प्रबन्धन की बात उभर कर आ गयी। अब धीरे-धीरे वन विभाग भी यह बात मानने लगा है। स्थानीय लोगों के सहयोग के बिना जंगल और जंगली जानवरों को बचाया नहीं जा सकता।

सरिस्का के परिसर में रहने वाले जनसमुदाय का वहाँ की प्रकृति और जंगली जीवों से परस्पर गहरा सम्बन्ध पुराने जमाने से है। जलागम विकास कार्यक्रम के माध्यम से ये सम्बन्ध फिर से मजबूत हो गये। इसका सबूत देता है जहाजवाला जोहड़। संघ के इस काम से गाँव की सामलातदेह पर भी प्रभाव पड़ा है। इसके बारे में चेतना पैदा हुई है। देवरी ने जंगल बचाने का निश्चय करके जंगल बचाया तथा गाँव के पूरे क्षेत्र में हजारों स्थानीय प्रजाति के पेड़ लगा दिये। जंगल बचाने से गाँव की खेती का उपजाऊपन बढ़ गया और उनका

पशुपालन का धंधा भी पुनर्जीवित हो गया है। अंग्रेजों के समय से जंगल विभाग के कानून से पूरा माहौल बदल गया था। जबसे जंगल गाँव की सामलातदेह नहीं रहा था, तब से गाँव वालों का जंगल के प्रति नजरिया बदल गया था। सरकार जब गाँव वालों में अपनेपन की भावना पैदा नहीं कर सकी, तो सरकारी संपत्ति को लोग अपना कैसे समझें ? जो कुछ सरकारी है, वह किसी का भी नहीं होता। फिर वहाँ लूटपाट करने में किसी को झिझक भी नहीं होती, और दूसरा कोई कर रहा है तो उसको रोकने की हिम्मत या जरूरत भी नहीं होती। सरकार के रवैये और रोजमर्रा की मजबूरी ने परायापन पैदा किया है। इसलिए लोग आज जंगल को लूट की वस्तु समझने लगे हैं। जंगल बचाने की पूरी जिम्मेदारी वन विभाग पर डाल दी गयी, तो उसका उपयोग करने वाले गाँव के लोग व उनके मवेशी जंगल के दुश्मन माने गये। ये ही लोग जंगल का संरक्षण-संवर्धन करते हैं, यह बिल्कुल नजरअंदाज कर दिया गया। न केवल वन विभाग ने बल्कि तथाकथित वन्यजीव प्रेमियों ने और पूरे समाज ने भी यही माना। इसलिए गाँव वालों का जंगल में रहना तो अपराध है ही और उसे बचाने की कोशिश तो उससे भी बड़ा जुर्म। लेकिन देवरी में विकास का काम हुआ, लोगों ने जंगल बचाने का निश्चय करके उस पर अमल किया। जंगली जीवों के लिए जोहड़ बनाया। देवरी फिर से हरी-भरी होने लगा है।

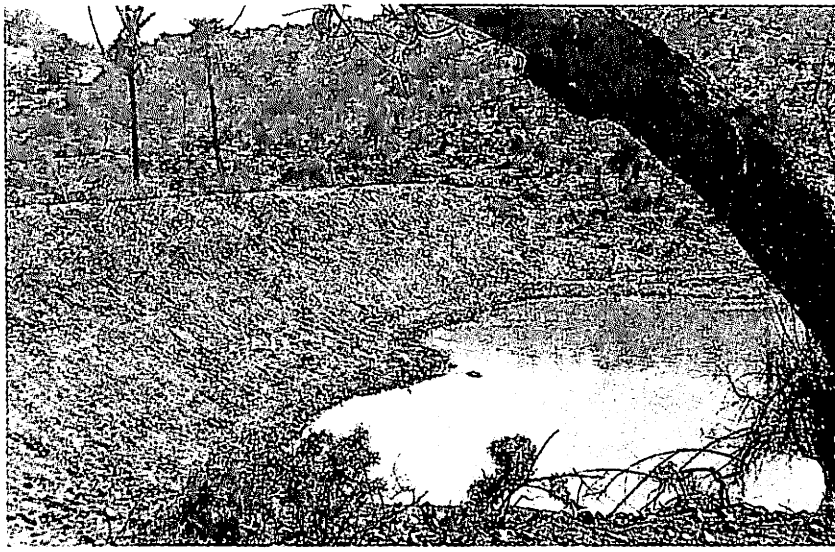

8

देवरी का जलागम क्षेत्र विकास

पुराने जमाने में देवरी के चारों ओर के पहाड़ घने जंगलों से ढके हुए थे। थोड़ी-सी खेती, पशुधन और जंगल उत्पाद – इन सब पर लोगों की अच्छी गुजर हो जाती थी। फिर वन विभाग ने 1960 के दशक में कूप लगा कर पेड़ काटे और देवरी में पानी की समस्या की शुरुआत हुई।

तेज ढलान की पहाड़ियों पर से वृक्षों का आच्छादन हटने के साथ ही भू-क्षरण बढ़ा। बारिश की मोटी बूंदें पहले तो घने जंगल के कारण पेड़ों की पत्तियों से टकरा कर छोटी-छोटी बूंदों में परिवर्तित हो जाती थीं। साथ ही, उनकी गति भी इस टकराने से क्षीण हो जाती थी। ये छोटी बूंदें फिर धीरे-धीरे अन्य पत्तियों-पेड़ की डालों आदि से टकराती हुई, रुकते-रुकते जमीन पर उगी झाड़ियों तथा घास आदि पर गिरती थीं। घने जंगल के कारण जमीन पर सूखे पत्ते भी बड़ी मात्रा में पड़े होते थे। बारिश की छोटी बूंदें झाड़ियों तथा घास पर से फिसलती हुई, सूखे पत्तों पर टपकती हुई, धीरे-धीरे जमीन में समा जाती थीं। घना जंगल होने के कारण, कितनी ही तेज बारिश क्यों न हो, जमीन की सतह पर बारिश की बूंदें छिन्न-भिन्न होकर अपनी गति खोते

हुए धीरे से पहुंचती थीं। फिर जमीन की ऊपरी सतह में फैली घास-बेलों-झाड़ियों की जड़ें वर्षा के पानी को जमीन के अन्दर जाने के लिये बाध्य करती थीं। तब बड़े पेड़ों की जड़ों के आसपास यही पानी जमीन के अन्दर और गहराई तक चला जाता था। जो पानी ढलान पर, जमीन की सतह पर बहता भी था वह सूखे पत्तों/जड़ों आदि के अटकाव के कारण धीमी गति से ही ढलान पर नीचे जा पाता था। इसलिये पानी के साथ मिट्टी नहीं बह पाती थी। वैसे भी, मिट्टी को पेड़ों/झाड़ियों/घास की जड़ें पकड़े रहती थीं। जो पानी जमीन के अन्दर जाता था, वह धीरे-धीरे ढलान से नीचे खिसकता था तथा काफी समय बाद तक घाटी की तलहटी के खेतों में नमी बनाए रखता था। गर्मियों के अन्त तक यह पानी कुओं में उपलब्ध होता था। घने जंगलों के कारण सूर्य की किरणें भी जमीन तक नहीं पहुंच पाती थीं, जिसके कारण तापमान भी कम रहता था।

जंगल कटने के साथ ही पहाड़ियों की ढालू जमीन के ऊपर का आच्छादन हट गया। वर्षा की बड़ी-छोटी बूंदें तेज गति से जमीन पर आघात करने लगीं। ओले गिरते हैं तो खड़ी फसल भी थोड़ी ही देर में कैसे चौपट हो जाती है, यह सभी ग्रामीण लोग जानते हैं। उसी तरह से, वर्षा की बड़ी-बड़ी बूंदें जब मिट्टी पर तेज गति से आघात करती हैं तो हर बूंद के आघात से जमीन पर एक छोटा-सा गड्ढा बनता है और थोड़ी-सी मिट्टी के कुछ कण अपनी जगह से उछल कर इर्द-गिर्द जा पड़ते हैं। इन्हें पकड़ कर रखने वाली घास-पेड़ आदि की जड़ें न हों तो फिर वर्षा के पानी को भी ढलान के कारण जल्द ही अधिक गति मिल जाती है और फिर यह पानी अपने साथ मिट्टी के बिखरे कणों को बहा ले जाता है। धीरे-धीरे मिट्टी बहने का परिमाण बढ़ता जाता है और फिर जमीन के अन्दर गड़े पत्थर ऊपर आ जाते हैं। वैसे भी, इस क्षेत्र के पहाड़ों की मिट्टी में रेत की मात्रा अधिक होने के कारण वर्षा की बूंदों की थोड़ी-सी मार से भी मिट्टी के कण अलग हो जाते हैं और फिर पानी उन्हें आसानी से बहा ले जाता है।

घने जंगलों से बहकर नालों में आने वाला पानी स्वच्छ एवं पारदर्शी होता है, चाहे कितना भी पहाड़ी क्षेत्र क्यों न हो। *महाराष्ट्र के पश्चिमी घाट की खड़ी ढलानों के क्षेत्र में भीमाशंकर के सदाहरित जंगल 6,000 मिलीमीटर वार्षिक वर्षा का जोर सहन करते हैं। यहां आम अनुभव है कि घने जंगल से निकलने वाले नालों में भारी वर्षा में भी पानी इतना स्वच्छ होता है कि आप हाथ में लेकर उसे पी सकें। नाले में पानी का बहाव यहां इतना तेज होता है कि जलस्तर घुटने से ऊपर चढ़े तो आदमी को बहा ले जाये। पर यहां से पूर्व की ओर कुछ किलोमीटर जाते ही, पहाड़ियां नंगी हो जाने के कारण वहां के नालों में बहने वाले पानी का रंग मटमैला, चाय के रंग-जैसा हो जाता है।*

जब पहाड़ियों पर घने जंगल होते हैं, नालों में वर्षा का पानी बारिश शुरू होने के काफी समय बाद आता है। पेड़ों की पत्तियां, घास, जड़ें इत्यादि पानी को जमीन में रिसने पर मजबूर कर देती हैं और फिर बचा हुआ पानी ही ढलान से नीचे नाले में आता है। यदि पहाड़ों पर से पेड़ कट जायें तो वर्षा की बूंदें मिट्टी पर सीधा आघात करती हैं। तब पानी जमीन के अन्दर कम और सतह पर से ही ढलान के नीचे की तरफ अधिक मात्रा में जाता है। वर्षा शुरू होते ही मटमैला पानी ढलान से नीचे बहने लगता है और नालों में अपेक्षाकृत कम समय में पहुंच जाता है। ढलान से नीचे आते समय पेड़ों, घास, जड़ों आदि की रुकावट न होने के कारण, नीचे आते-आते उसका वेग भी बढ़ जाता है। इसी कारण वह अपने साथ अधिक मिट्टी बहा कर ले आता है। इसी दुष्चक्र के चलते भूक्षरण की समस्या गंभीर होती जाती है। पहाड़ियों पर पेड़ों के कटने से जमीन के अन्दर पानी कम जाता है और मिट्टी का कटाव बढ़ता है। इसी के फलस्वरूप नालों में वर्षा के पानी की मात्रा तथा वेग बढ़ता है। वर्षा का शुरू होना और नाले में पानी का पहुंचना – इसके बीच समय का अंतर भी कम होता जाता है। फिर बाढ़ आती है और तेज पानी का बहाव अपने साथ केवल मिट्टी ही नहीं, अपितु उसके रास्ते में जो कुछ भी आये उसका विनाश करता हुआ अपने साथ बहा ले जाता है।

यही बात देवरी के साथ भी हुई। गांव के चारों ओर की ढलानों पर एक जमाने में घने जंगल थे। लेकिन जमीन पर से जंगल का आच्छादन हटते ही मिट्टी का कटाव शुरू हुआ। धीरे-धीरे नालों में बाढ़ आने लगी और जमीन में पानी का रिसाव कम होने लगा। इसका सीधा प्रभाव था बारहमासी नालों का जल्दी सूखना। साथ ही, कुओं में जलस्तर कम हुआ और पीने के लिये तथा जानवरों के लिये पानी की समस्या खड़ी हो गयी। खेतों में नमी कम होने से फसल की पैदावार पर प्रतिकूल असर पड़ा। यही दुष्चक्र आगे चलता गया। पहाड़ियां नंगी हो चलीं। धीर-धीरे उन पर पत्थर ही पत्थर दीखने लगे। घास की भी कमी हो चली। मवेशियों के लिये चारा समस्या बन गया। न खेत में ढंग की पैदावार, न पीने को पानी। देवरी गांव जंगल-कटाई व भू-क्षरण के परिणाम भोगने लगा। एक तरफ वन विभाग का खौफ और दूसरी तरफ भू-क्षरण के परिणाम – इनके बीच देवरी के लोग पिसने लगे।

1986 में देवरी के लोगों तथा तरुण भारत संघ के संबंध बनने शुरू हुए तो गांव के सामने खड़ी समस्याओं के बारे में सभी ने इकट्ठा होकर विचार करना शुरू कर दिया। देवरी के लोगों का जीने का मुख्य आधार पशुधन था। लोगों ने अपने अतीत की परंपराओं में झांक कर देखा तो 'जोहड़' उपयोगी हो सकते हैं - ऐसा लगा। जोहड़ बनाने की परंपरा तो इस पूरे क्षेत्र में जमाने से चली आ रही है। जोहड़ यानी कि मिट्टी का बना एक छोटा बांध। गांव के चारागाह के नीचे की ओर, गांव

की बस्ती के आस-पास, जमीन के जरा निचले हिस्से में लोग जोहड़ बनाते थे। बारिश का आने वाला पानी इकट्ठा करके रखने के लिये ऐसी जगह को नीचे की तरफ से सीधी या अर्द्धचंद्र के आकार की मिट्टी की दीवार से घेर देते थे। बारिश का आने वाला पानी यहां आकर थम जाने से मवेशियों के लिये पानी की समस्या हल हो जाती थी। जोहड़ के नीचे वाले खेतों में नमी बढ़ जाती थी। इससे फसल की पैदावार सुनिश्चित होती थी। जोहड़ के नीचे एकाध कुआं रहा या लोगों के श्रम से बन सका तो गांव के पीने के पानी की समस्या भी हल हो जाती थी। जोहड़ के नीचे की ओर काफी दूर तक कुएं सजल हो जाते थे। जोहड़ कहां और कैसे बनाना है – यह जानकारी इस क्षेत्र की विरासत में मिली परंपराओं में उपलब्ध थी। जोहड़ में बह कर आने वाला पानी अपने साथ जो गाद लाता था वह भी यहीं जमा हो जाने से, जोहड़ के क्षेत्र की जमीन उपजाऊ बनती जाती थी। फिर जैसे-जैसे जोहड़ में पानी कम होता जाता था, इस खुलने वाली जमीन पर रबी की दूसरी फसल ली जा सकती थी। जोहड़ में जमा पानी अन्त तक जानवरों के उपयोग में आता था।

तो इलाज की शुरुआत यहां से हो सकती थी, यह बात लोगों एवं संघ की चर्चा से निकल कर आयी। फिर इस काम में जोड़ा गया देश की जानी-मानी संस्था **एफप्रो** को, जिनका भू-जल-संरक्षण के कामों में विशेष अनुभव था। **एफप्रो** के तकनीकी विशेषज्ञों ने 1991 में देवरी आकर क्षेत्र का अध्ययन किया, लोगों से बातचीत की। इससे जो तथ्य सामने आये वे इस प्रकार थे : देवरी का जलागम क्षेत्र, जिसमें देवरी, बांकला एवं गुआड़ा शामिल हैं, लगभग 446 हेक्टेयर है। इसमें से केवल 12% जमीन (55 हेक्टेयर) पर खेती होती थी। लगभग आधे क्षेत्र पर उस समय कोई मानवी हस्तक्षेप नहीं था। एक तृतीयांश क्षेत्र पर जंगल कटाई के बाद थोड़ी-बहुत झाड़ियां उग आयी थीं। पश्चिमोत्तर से दक्षिण-पूर्व की ओर फैली हुई एक संकरी-सी मिर्च के आकार की घाटी, दो तरफ से अधिक ढलान की पहाड़ियों से घिरी हुई है। घाटी के तल में खेतों में मिट्टी की गहराई दो से तीन मीटर है। मक्का तथा गेहूं की फसलें मुख्य रूप से ली जाती थीं। परन्तु आजीविका का प्रमुख साधन पशुधन ही था। सरकारी रिकार्ड के अनुसार क्षेत्र की पिछले पचास वर्षों की औसत वर्षा लगभग 573 मिलीमीटर थी। लोगों का कहना था कि पिछले पांच-छह वर्षों में बारिश में कमी आयी थी। 15 कुओं में से केवल 5 कुओं में गर्मियों में मामूली-सा पानी उपलब्ध होता था, बाकी जल्दी ही सूख जाते थे।

जोहड़ों के बनने से देवरी का काया-पलट हो गया। गांव के 18 में से 17 कुएं लबालब भर गये। आज उनमें से 14 कुओं पर इंजन लगे हैं। जोहड़ बनने के पहले मार्च में इनमें से केवल 3 कुओं – खेंवाला, खारा कुआं तथा रास्ते वाला कुएं में मामूली पानी बचा रहता था। बाकी सूख जाते थे या

फिर उनमें सिर्फ कीचड़ रह जाती थी। जोहड़ बनने के बाद कुओं में जलस्तर अच्छा-खासा बढ़ गया।

आज पौधे बड़े हो गये हैं। घास भी पर्याप्त मात्रा में मवेशियों को उपलब्ध हो रही है। नंगी पहाड़ियां हरी-भरी होने लगी हैं। पहाड़ियों के कुछ क्षेत्र अभी भी पथरीले दीखते हैं। लोगों ने बताया कि ऐसी कुछ जगहों पर बहुत पुराने समय में भी पेड़ नहीं थे। प्रकृति में ऐसा कुछ अन्य जगहों पर भी दिखायी देता है। *महाराष्ट्र के राधानगरी अभयारण्य (कोल्हापुर जिला) में कुछ पठारी भाग ऐसे हैं, जहां केवल थोड़ी घास होती है। वहां के स्थानीय लोगों ने बताया था कि अधिक वर्षा के समय ये जगहें जंगली भैंसों का आश्रय-स्थान होती हैं। इसलिये अच्छे जंगल में भी ऐसे कुछ स्थान होते हैं – जरूरी नहीं कि सभी जगहों पर घना जंगल हो। ऐसी जगहें भीमाशंकर अभयारण्य में भी पायी जाती हैं।*

देवरी की बदली हुई तस्वीर 1995 में कुछ ऐसी थी – 81 हेक्टेयर भूमि सिंचित होती थी। 18 में से 17 कुओं में पानी भरपूर हो गया था। 14 कुओं पर पानी निकालने के लिये डीजल इंजन पंप लग गये थे, कुछ पर तो 2-2 इंजन भी लगे थे। उस वर्ष देवरी में 1,200 क्विंटल गेहूं, 800 क्विंटल मक्का तथा ज्वार व 40 क्विंटल सरसों हुई, जिसकी कीमत लगभग 10 लाख रुपये थी। साथ ही दूध का उत्पादन दुगुना हो गया था। यह लोगों की तकदीर बदलने की शुरुआत थी।

इसे भू-जल संरक्षण की सफल कहानी माना जा सकता है। परन्तु देवरी की काया-पलट का कारण केवल भू-जल-संरक्षण का कार्यक्रम नहीं था। मुख्य कारण था लोगों का संगठन, सार्वजनिक समस्याओं के संबंध में नियमित चर्चा, तथा उन्हें सुलझाने के लिये कारगर हल निकालने के प्रयत्न। देवरी में जो हल निकला, वह है गांव के संसाधनों पर गांव का अधिकार। इसके अनुरूप, अपने बिगड़े हुए संसाधनों को ठीक करने के लिये कार्यान्वित किया गया था भू-जल-संरक्षण का अपनी समझ व अपने तरीके से किया गया काम। इन समस्याओं का समाधान मनुष्य खुद कर सकता है। देवरीवासियों की तरह दूसरी जगहों के लोग भी आपस में मिल-जुल कर, चर्चा करके ही समस्याओं का समाधान कर सकते हैं। भोगवादी संस्कृति की लूट से बच सकते हैं। और आगे आने वाली पीढ़ियों के सुखद भविष्य की पुख्ता नींव रख सकते हैं।

देश के अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में भू-जल-संरक्षण के कार्यक्रम आज सभी समस्याओं के लिये रामबाण उपाय समझ कर एक तंत्रवैज्ञानिक उपाय के रूप में प्रशासन एवं कई संस्थाओं द्वारा किये जा रहे हैं। परन्तु यह उपाय अधूरा है। समस्याएं मानवी हैं, इसलिये उनका हल भी केवल तंत्रवैज्ञानिक नहीं हो सकता।

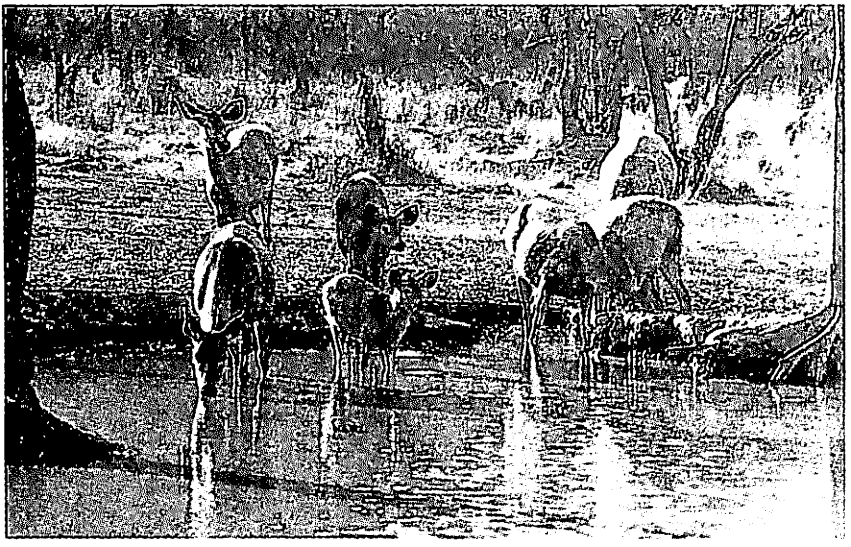

9

भ्रामक अवधारणा

देवरी में जलग्रहण क्षेत्र का काम होने से रोज की जरूरतों के लिए और सिंचाई के लिए पानी की अच्छी व्यवस्था हुई है। अनाज का उत्पादन बढ़ गया। संगठन से लोगों को ताकत मिल गयी। वन कर्मचारी गाँव से हट गये। लोग ग्रामसभा में बैठकर गाँव का कारोबार कर रहे हैं। वन विभाग को यह खलता रहा था, वैसे ही कई **वाइल्ड लाइफर्स** को भी। उनकी दृष्टि से देवरी जैसे राष्ट्रीय उद्यान के कोर क्षेत्र के गाँव को उठाना ही पड़ेगा क्योंकि कानून के मुताबिक राष्ट्रीय उद्यान तभी बनता है जब यह पूरी तरह निर्जन हो जाए। उनको यह डर लग रहा है कि देवरी में जब खेती का उत्पादन बढ़ रहा है तो लोग जंगल की जमीन पर कब्जा करके खेती के उपयोग में लाएंगे। जंगली जानवर फसलों का नुकसान करेंगे या इनकी मवेशियों पर हमला करेंगे तो लोग जंगली जानवरों के दुश्मन बन जाएंगे। यहाँ चारा-पानी की सुविधा बन गयी तो बाहर की मवेशी यहाँ आ ही जायेगी। यह सारा कानून के खिलाफ होगा।

एक जाने-माने **वाइल्ड लाइफर** ने देवरी के बारे में अध्ययन करके यह

कहा कि यहाँ वॉटर शेड का काम अच्छा हुआ है। देवरी का नाला बारहमासी बहने लगा है, इससे जंगली जीव-जन्तुओं को बहुत सारी जगह पर पानी उपलब्ध हो जाने से शिकार का डर कम हो गया है। लेकिन उनको एक तो कानून टूटने का डर लग रहा है, दूसरा डर उनको लग रहा है कि अब देवरी को हटाना बहुत मुश्किल हो जाएगा। एक तरफ से पोचिंग और शिकार कम होगा यह कहते हुए भी इनको लग रहा है कि जब पोचिंग होगी तो गाँव के लोग उन तस्करों का मुकाबला नहीं कर पाएंगे और करना भी नहीं चाहेंगे क्योंकि उनको अपनी औरतों पर हमला होने का डर लगेगा। इन्होंने सुझाव दिया है कि कोई भी सेवाभावी संस्था यदि राष्ट्रीय उद्यान, बाघ परियोजना के क्षेत्र में काम करना चाहती है तो वह अपनी योजना पहले टाइगर स्टीयरिंग कमेटी के सामने पेश करे तथा उनसे अनुमति ले ताकि वह योजना इस परियोजना के उद्देश्यों से मेल बैठा सके। ये लोग यह भूल जाते हैं या इसे अनदेखा कर देते हैं कि यदि शिकार की संभावना इतनी प्रबल है तो जब ये लोग नहीं रहेंगे तो उसका प्रतिरोध कौन करेगा।

वन विभाग या **वाइल्ड लाइफर्स** के लिए यह नीतिमूलक बात है। इन्होंने यह सोचा ही नहीं है कि सदियों से ऐसे जंगलों में वहां की स्थानीय जनजाति और वन्यजीव साथ-साथ पले हैं। वनवासियों से जंगली जानवरों को और जंगल को खतरा था तो क्या ये आज तक ऐसे लोगों से बच पाते ?

स्थानीय लोगों के पास जंगल और प्राणियों के बारे में गहरी जानकारी होती है। अगर ये **वाइल्ड लाइफर्स** स्थानीय लोगों के साथ कुछ समय के लिए रहें, तो उनको यह बात पूरी तरह से समझ में आएगी। स्थानीय लोग "जैविक विविधता" जैसे शब्द इस्तेमाल नहीं करते, लेकिन वे बाहर के लोगों की तुलना में इसके बारे में बहुत अच्छी तरह से जानते हैं। उनके जीवन के लिए जैविक विविधता की बहुत जरूरत है। इनका पूरा जीवन जंगल पर निर्भर रहता है। उनके लिए घास, चारा, पत्ती, फल, फूल, कंदमूल, धागा, ईंधन, घर बनाने के लिए लकड़ी, औजारों के लिए लकड़ी, दवाई के लिए जड़ी-बूटी आदि सारी चीजें जंगल से ही मिलती हैं। शाकाहारी पशु, उन पर निर्भर रहने वाले मांसाहारी पशु, पंछी, कीड़े-मकोड़े इन सभी का प्रकृति के लिए महत्त्व वे अच्छी तरह से जानते हैं। ये कभी उनको शत्रु नहीं मानते बल्कि जंगलवासियों के मन में इनके प्रति एक प्यार और आदर की भावना रहती है। उनको वे भगवान् स्वरूप भी मानते हैं। जंगल, जंगली जीव और वहाँ के जनसमुदाय एक-दूसरे के मददगार होते हैं, तभी तो वे साथ-साथ रहते हैं। बाघ को यहाँ लोग देवता मानते हैं, इस बात पर किसी ने गौर ही नहीं किया है। ऐसी भावना का वन्यजीव संरक्षण में बहुत महत्त्व है। इस बात को न तो वन्यजीव प्रेमी जानते या मानते हैं, न सरकारी अधिकारी, न राजनैतिक

लोग। इनकी दृष्टि से संरक्षित वन विभाग बनाना ही एकमात्र विकल्प है। *दुनिया का पहला राष्ट्रीय उद्यान 'येलो स्टोन पार्क' 1872 में अमरीका में बनाया गया था। इसे बनाने के पीछे संरक्षण की कोई दृष्टि नहीं थी। दृष्टि थी केवल पर्यटन की। उसे बनाने का जो इतिहास है, वह आज तक दुनिया से छिपाकर रखा गया था। लेकिन अब जो बात सामने आयी है, वह बहुत दर्दनाक है। उस प्रदेश में बहुत पुराने समय से रहने वाले रेड इंडियन्स, जो इसको अपनी मातृभूमि मानते थे, वहां से हटने के लिए बिल्कुल तैयार नहीं थे। ऐसे 300 लोगों को गोली से उड़ाकर और बाकी के लोगों को जबरदस्ती भगाकर यह पार्क बनाया गया है। इस इतिहास को छिपाकर अमरीकी शासन कहता है कि लोग स्वेच्छा से विस्थापित हुए थे।* संरक्षित विभाग बनाने का इतिहास दरअसल रक्तरंजित है। भारत में भी ऐसा ही इतिहास है। अभी-अभी की बात है। *जुलाई 1997 में मध्य प्रदेश के कान्हा राष्ट्रीय उद्यान के कान्हा गाँव से, जहाँ पर्यटकों के लिए केन्द्रस्थल बनाया गया है, वहाँ के निवासी आदिवासी परिवारों को उठाया गया। जुलाई की बारिश के महीने में किसी को भी कैसे उठाया जा सकता है, यह किसी भी वन अधिकारी के मन को नहीं कचोटा। जिनको उठाया गया, वे भी एकदम दरिद्र थे। जिनका परिवेश ही उनकी एकमात्र संपत्ति, जीने का इकलौता आधार है, उनकी नयी जगह पर न खेती है, न जुलाई के महीने में भारत जैसे मानसूनी वर्षा के प्रदेश में कोई खेती की शुरुआत कर सकता है। इन परिवारों को वहाँ चूल्हे में जलाने के लिए सूखी लकड़ी भी नहीं मिली होगी। उनका जीवन तबाही के कगार पर पहुंचाया दिया गया है। कान्हा राष्ट्रीय उद्यान से 1974 के आसपास जिन गाँवों को उठाया गया, ऐसे एक गाँव से उनको भी बारिश के दिनों में ही उठाया गया था। पहले साल में कुछ 40 परिवारों में से 13 लोगों की मृत्यु हो गयी थी। आज भी उनका ठीक से पुनर्वास नहीं हुआ है।* लेकिन यह बात **वाइल्ड लाइफर्स** के कानों तक जा ही नहीं सकती। हमारे अभयारण्य और राष्ट्रीय उद्यान पूरी तरह से सरकार के वन विभाग के कब्जे में हैं। उनकी ताला-चाबी इन्हीं के हाथ में है, तो शहरी **वाइल्ड लाइफर्स** उन्हीं के सहारे वहाँ जा सकते हैं और सिर्फ उन्हीं की बात सुन सकते हैं। स्थानीय जनसंगठन या संस्था के लोगों के साथ जाकर ये गाँववालों की बात सुनेंगे तो सिक्के का दूसरा पहलू भी उनको समझ में आयेगा। इनका मानना है कि वहाँ रहने वाले लोग और उनकी मवेशियों के दबाव से जंगल ध्वस्त हो रहा है। शहरवासियों की विविध जरूरतों के कारण अंग्रेजों के जमाने से जो जंगल कटाई हो रही है, असलियत में वह जंगल के विनाश के लिए जिम्मेवार है। अब जब जंगल बहुत कम बचे हैं, तो फिर जो लोग विवेकपूर्णता से जंगल का दोहन करते थे, वे अभी विध्वंसक से लग रहे हैं। लेकिन जंगल बचाने की या उसका संवर्धन करने की ताकत सिर्फ वनवासियों में है।

वाइल्ड लाइफर्स का मानना है कि गाँवों के विस्थापन के बारे में भावुक होने की कोई जरूरत नहीं है। लेकिन इन लोगों के मानवीय हकों का सवाल भी तो है। यह आज तक ठीक तरह से साबित नहीं हुआ है कि जंगल के निवासी ही जंगल का विनाश करते हैं। इस विषय पर काफी शोध और विचार होने की जरूरत है। इनका यह भी कहना है कि कुछ छोटे टुकड़े तो हम वन्य प्राणियों के लिए सुरक्षित रखें। ऐसे रूमाल जैसे टुकड़ों से न वन्य प्राणियों का संरक्षण होगा, न संवर्धन होगा। उनके लिए तो एक बड़े से भूभाग की जरूरत है। तो बात होनी चाहिये सहजीवन की। इन्सान और जानवर साथ-साथ रहें, तो ही ये बचेंगे। इसलिए हमारी पूरी जीवनशैली में बदलाव लाना जरूरी है। लोगों, जंगली जीवों, जंगल, पानी, घर, मन्दिर, गांव को साथ-साथ समग्रता में देखना जरूरी है। देवरी गांव के घर, मन्दिर, जंगल, जीव, साथ-साथ दिखाई दे रहे।

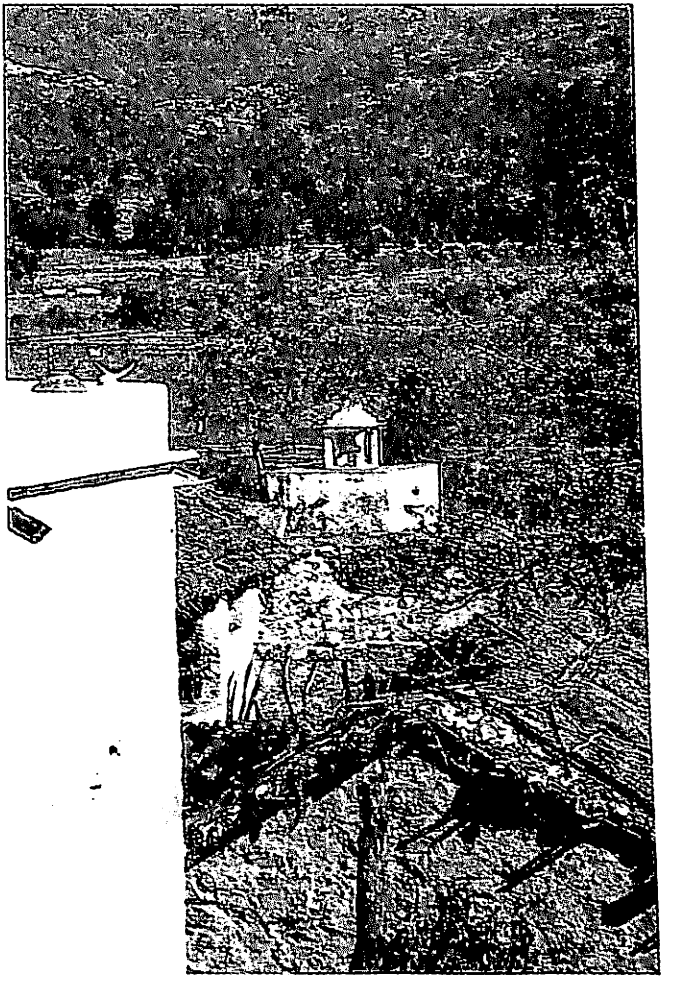

10

भविष्य को लील जाएगा उपभोक्तावादी विकास

हम जब अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान अर्थात् वन्यजीवन संरक्षण विभाग की बात करते हैं, तो इसके पीछे हमारे उद्देश्य क्या हैं, यह देखना पड़ेगा। जैविक विविधता संरक्षण नीति के पीछे भी कई उद्देश्य हो सकते हैं। एक तो मानव के कई उपयोगों के लिए उनको बचाना है। जैसे कि संकरित प्रजाति निर्माण करने के लिए, जिसमें वनस्पति तथा जीव-जंतु दोनों आते हैं। दूसरा दवाइयाँ बनाने के लिए जड़ी-बूटी का भण्डार, जिस पर नजर रखकर बैठे हैं बहुराष्ट्रीय दवाई कम्पनी वाले। और एक उद्देश्य है कि मानव के मनोरंजन के लिए ये सारे वनस्पति और जीव-जंतु सम्हाल कर रखे जाने चाहिये। ये सब विचार मानव-केन्द्रित हैं। लेकिन स्थानीय लोग, कई स्वयंसेवी संगठन और बुद्धिजीवी एक अलग दृष्टि रखते हैं, वह है - सारी जैविक विविधता से मानव का भाईचारे का रिश्ता। मानव का निर्माण तो इन्हीं से हुआ है। न्याय और नैतिकता की दृष्टि से अगर देखा जाये तो बाकी की सारी प्रजातियों के भी उतने ही हक हैं, जितने मानव के हैं। हम सिर्फ मानव-केंद्रित दृष्टि रखकर सबको इस्तेमाल करेंगे। उनको एक जगह से उनकी प्रकृति से उठाकर और कहीं पुनर्वासित करेंगे, यह उनके साथ खिलवाड़ करना होगा और स्थानीय समुदाय अपनी

सामलातदेहों की व्यवस्था करता है, तो सिर्फ एक स्वार्थ की दृष्टि से नहीं करता। उसको एक नैसर्गिक शक्ति मान कर सम्मान के साथ रखता है। हमें यह सोचना पड़ेगा कि मनुष्य और प्रकृति का रिश्ता हम क्या मानते हैं ? निसर्ग सिर्फ हमारी आवश्यकता की आपूर्ति के लिए रखा गया भण्डार नहीं है, जो जब चाहें, जैसे चाहें हम ले लें या नष्ट करदें। पश्चिम की दृष्टि से देखें तो उसको हम एक भोग्य वस्तु समझेंगे। लेकिन आदिवासी या वनवासियों के लिये यह माता है जिसके दूध से वे पलते हैं, उसका खून चूस कर नहीं। सामुदायिक संसाधन की रक्षा हम सिर्फ अपने निजी हितों के आधार पर करें, यह ठीक नहीं होगा। महाराष्ट्र के श्री वसंत पलशीकरजी ने यह बात रखी थी कि "हमारे संतों ने अलग रास्ता हमको दिखाया है। जैसे कि संत तुकाराम ने कहा है कि वृक्षवल्ली और जंगली जानवर हमारे रिश्तेदार एवं सहयोगी हैं। आज की स्थिति में हम मानते हैं कि ऐसे अभय क्षेत्र रखने की जरूरत है, लेकिन स्थानीय लोगों को उनके व्यवस्थापन के लिए जिम्मेवार और सहभागी बनाये बिना यह नहीं हो सकता।" प्राकृतिक संसाधन, सामलातदेह व पर्यावरण की सबसे अच्छी हिफाजत स्थानीय निवासी ही कर सकते हैं। पर्यावरणवादी भले ही जंगलों से वनवासियों को खदेड़ने की बात करें, पर गहरी समझ वाले उन्हें पर्यावरण का सबसे अच्छा दोस्त मानते हैं। यह बात तो हमेशा दिखाई देती है कि जहाँ सामलातदेह का उपयोग करना सरकार ने शुरू किया, वहाँ स्थानीय लोगों की, खासकर गरीबों की परेशानियाँ बढ़ी हैं और सामलाती संसाधनों का क्षरण हुआ है। आज की हमारी विकास की अवधारणा भोगवादी बन गयी है। विकास का मतलब हुआ है कि हमारे ऐशोआराम के लिए, उपभोग के लिए रोज कुछ हासिल करना चाहिए। उपभोग के साथ-साथ बेमतलब संचय भी हमें करना है। इसी के साथ जुड़ी है ज्यादा से ज्यादा उत्पादन की आवश्यकता और प्रकृति पर नियंत्रण तथा उसका अधिक से अधिक दोहन। पर्यावरण का मौजूदा संकट भी इसी विकास की दृष्टि से पैदा हुआ है। हमारी पर्यावरण रक्षण की भारतीय दृष्टि इससे बहुत अलग है। वह प्रकृति पर नियंत्रण के बजाय उसके साथ मेल-मिलाप वाले संबंध रखना चाहती है। श्री अरुणकुमार त्रिपाठी ने लिखा है "हम आधुनिक सभ्यता का प्रतिकार करते हुए वैदिक युग में नहीं जा सकते। हमें इसी आधुनिक दौर में अपने राष्ट्रीय हितों को ध्यान में रखकर विकास नीतियाँ बनानी होंगी। हम उपभोक्तावाद को समाप्त नहीं कर सकते, लेकिन उस पर अंकुश जरूर लगा सकते हैं। अगर हमारी विकास और पर्यावरण नीति पर यह दृष्टि हावी रहे कि पर्यावरण और जैव संपदा का अस्तित्व सिर्फ मानव उपभोग के लिए जरूरी नहीं है, बल्कि उनका बना रहना अपने आप में महत्वपूर्ण है, तो हम शायद आने वाली पीढ़ियों को रहने लायक धरती दे सकें। अगर हम मानव जाति, धरती के समस्त जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों को सुरक्षित भविष्य देना चाहते हैं, तो धरती की विविधता को बचाने की कोशिश हमें करनी ही पड़ेगी।"

11

आगे की दिशा

देवरी के लोग आज संपन्न और स्वस्थ हैं। अब कोई चिंता नहीं है, न पीने के पानी की, न जानवरों के लिए पानी की या सिंचाई के लिये पानी की, और न चिंता है चारे और ईंधन की। खेती में पैदावार अच्छी हो रही है। गाँव में शांति है, लोग एक- दूसरे की मदद करते हैं। किसी को रिश्वत नहीं देनी पड़ती। लोग जरूरत पड़ने पर ग्रामसभा की बैठक करते हैं। घर में मेहमानों का स्वागत करते हैं। शादी-ब्याह में बहुत ज्यादा खर्च नहीं करते। उत्पादन पहले गाँव की जरूरत के लिये, फिर पड़ोस के गाँव की जरूरत के लिये और फिर बाजार में भेजते हैं। जंगल भी सुरक्षित हो गया है। वन विभाग वहाँ चौकी बनाना चाहता है। इतने साल के बाद गाँववालों ने उनको चौकी बनाने के लिये अनुमति दे दी है। गाँव में स्कूल है, शिक्षक वहाँ रहते भी हैं। स्कूल भवन का मकान बनाने का काम चल रहा है। आधा-अधूरा भवन खड़ा है। गाँव में लड़के तथा लड़कियाँ स्कूल में पढ़ रही हैं। गाँव में हर कुएं पर डीजल के पम्प सैट पानी खींच रहे हैं। गाँव के कई परिवारों ने पैसे जुटाकर ट्रैक्टर खरीदे हैं। इसके लिये ग्रामसभा से अनुमति ली गयी। दो ट्रैक्टर गाँव में हैं। पुरुष पहले बहुत कम काम और मेहनत करते थे। घर का और खेती का बहुत सारा काम औरतें ही

करती थीं। लेकिन आज खेती में पुरुष भी काम कर रहे हैं। दूध का उत्पादन बढ़ गया है तो औरतों के हाथ में कुछ पैसे भी आ रहे हैं। घर-गृहस्थी ठीक चल रही है तो महिला अब अधिक स्वस्थ और प्रसन्न दिखाई दे रही है। देवरी के लोगों ने कहा है ''अब हमारे गाँव में देवों का वास हो रहा है। यह अपने नाम को सार्थक कर रहा है। पहले हमें कभी समझ नहीं आता था कि हमारे गाँव का नाम देवरी क्यों पड़ा ? अब समझ आया है। चारों तरफ सघन हरियाली, बाघ, बकरी तथा आदमी साथ-साथ इस भूमि पर रह रहे हैं। यह सब केवल देवभूमि या तपोभूमि पर ही संभव है। इसलिए पुराने जमाने में पहले भी यहाँ ऐसी ही सुख-समृद्धि कभी न कभी रही होगी, तभी हमारे पुरखों ने इसे देवरी नाम दिया होगा। अब वे ही पुराने सुख-समृद्धि के दिन आ गये हैं। अब मेहमानों को यहाँ हम आमंत्रित कर रहे हैं। इनका आदर-सत्कार करने में हमको प्रसन्नता होगी।'' देवरी के युवाओं ने श्रमदान से देवरी की कच्ची सड़क को बना दिया है। पहले खेतों के रक्षण के लिये पेड़ों की बल्ली उपयोग में लाते थे, आज पत्थर के बांध बना रहे है। जंगल संरक्षण के बारे में लोग बहुत सतर्क हो गए हैं।

देवरी के लोग जब तक भोगवादी नहीं बनते तब तक यह ठीक है। उनका लालच बढ़ गया तो वे तीन-तीन फसलें लेने लगेंगे। उसमें संकरित, ज्यादा उत्पादन वाले बीज इस्तेमाल करेंगे। उसके लिये रासायनिक खाद, दवाइयां और पेस्टिसाइड भी प्रयोग करने लगेंगे तो यह सारा चित्र बिगड़ जायेगा। पैसे और दिखावे के चक्कर में आकर कपड़े और फिर सफेदी का चमत्कार वाले डिटर्जेंट इस्तेमाल करने लगेंगे, मानव-निर्मित धागे और पालिथीन-प्लास्टिक इस्तेमाल करने लगेंगे तो यह समृद्ध निसर्ग अंश बिगड़ जायेगा। पैसे और ऐशो-आराम के पीछे यहाँ की संस्कृति बिगड़ जायेगी और ऐसा होगा तो रोकना भी मुश्किल है, क्योंकि आज के विकास का नमूना यही है। **वाइल्ड लाइफर्स** चाहे कुछ भी कहें। उनकी खुद की जीवनशैली अगर यहाँ के लोग अपनाएँ तो उनको दोष भी कोई कैसे दे सकता है ? हो सकता है कि यहाँ के युवक चाहते होंगे कि वे तरक्की के रास्ते पर निकल जाएं।

अगर किसी निसर्ग अंश को बचाना है, इस दुनिया में संतुलन रखना है, तो इसकी पूरी जिम्मेवारी दूरदराज के देवरी जैसे गाँव में बसे हुए लोगों पर नहीं थोपी जा सकती। उपभोक्तावाद से जंगल का अगर नुकसान हो रहा है तो सारी जनता, खासकर के जिनकी जरूरतें ज्यादा हैं उन पर ज्यादा जिम्मेवारी होनी चाहिये। गाँव के लोग ईंधन के लिए टहनी काटते हैं, लेकिन जब शहर में लकड़ी आती है तो टहनी नहीं पूरे के पूरे पेड़ आते हैं। इसके बारे में हमें सोचना पड़ेगा। हमारी विकास की अवधारणा क्या है, दिशा क्या है, ये सारी बातें खुलकर सोचनी पड़ेंगी। सिर्फ अभयारण्य या राष्ट्रीय उद्यान जैसे संरक्षित क्षेत्र, उसके कोर और बफर बनाकर वहाँ

से स्थानीय लोगों को हटाने से काम नहीं चलेगा। ये संरक्षित क्षेत्र भी एक सामलातदेह हैं। लेकिन किसकी सामलातदेह हैं ये ? संरक्षित क्षेत्र बनाने की नीति किस दबाव में आकर बनाई जा रही है, किसके पैसे के लालच में आकर यह तय की जा रही है ? इसके ढांचे कौन तय कर रहा है यह सारी बात देखनी चाहिये। धनवान्, पश्चिमी सभ्यता वाले देशों के लिये पूरी दुनिया गिरवी तो नहीं रखनी है। इसमें उन सबके बराबर के अधिकार होने चाहिये जिन्होंने आज तक इसको संभाला है। ऐसे आदिवासी लोगों के अधिकार ज्यादा रहने चाहिये और उनको प्राथमिकता देनी पड़ेगी, क्योंकि वे ही जानते हैं कि इसको कैसे सम्हालना है।

तरुण भारत संघ का काम आगे चल रहा है। क्षेत्र बढ़ रहा है, विस्तार हो रहा है। देवरी के लोगों को खुद सोचना है कि आगे का रस्ता कैसे तय करें ? गाँव के जो बलाई परिवार हैं, जो पिछड़ी जाति के हैं, वे गाँव में रहें, जाति प्रथा पूरी तरह से सुधारी जाए। जमीन के भाव जो बहुत बढ़ रहे हैं, उसका नतीजा क्या होगा ? **तरुण भारत संघ** को इस पर अधिक ध्यान देना होगा जिससे बराबरी व सादगीपूर्ण समाज का निर्माण हो सके। यही संस्कृति का सार है और यही विकास का लक्ष्य होना चाहिए। **तरुण भारत संघ** ने शिवधनुष तो उठाया है, या अब उसे भविष्य में संभालने की जिम्मेदारी की बात है।

देवरी गांव से शुरू हुआ सरिस्का बचाओ आंदोलन : मकर संक्रान्ति 1995

चारे के लिए स्वालम्बन का प्रतीक है देवरी गांव

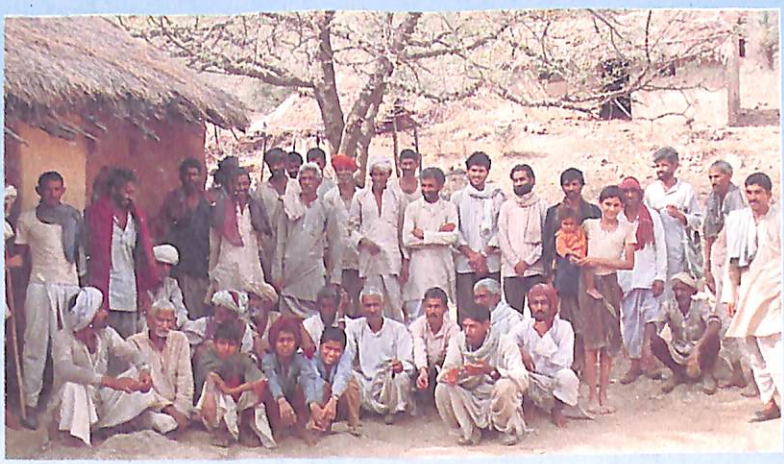

तरुण भारत संघ

भीकमपुरा-किशोरी, थानागाजी, अलवर-301 022

मुद्रक : कुमार एण्ड कम्पनी, जयपुर

रु. 21/-